सस्ता-साहित्य-मण्डल

एकसठवाँ ग्रन्थ

जीवन-सूत्र

[टामस ए० केम्पिस के 'इमीटेशन ऑव् क्राइस्ट' का स्वतन्त्र अनुवाद]

अनुवादक

श्री रामनाथ 'सुमन'

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-मण्डल,

अजमेर

प्रथम बार २१५०

मूल्य ।।।)

नवम्बर सन् १९३२

मुद्रक—

जीतमल लूणिया,

सस्ता-साहित्य-प्रेस,

अजमेर।

प्रातःस्मरणीय,

योगी और परमहंस

हिमालयवासी श्री स्वामी गंगानंद जी महाराज के चरणों में—

गुरुदेव,

आप न जाने कहाँ हैं ? इन दस वर्षों में मैं बहुत गिरा हूँ; प्रमाद के कारण अनेक बार पतित हुआ हूँ। यदि आपका सत्संग मिलता रहता तो आज मेरी यह दशा क्या होती ?

आपके चरणों में बैठकर पहले-पहल आध्यात्मिक उपासना का महत्व समझ पाया था; आज प्रलोभन और प्रमादपूर्ण जीवन के अंधेरे मार्ग में मेरे लिए वही सहारा है। उसे भूल जाता हूँ पर संसार की ठोकर खाकर, गिर कर, तिलमिलाकर फिर उधर आँखें उठाकर जीवन की भिक्षा मांगता हूँ।

मैं आपको क्या दे सकता हूँ ? आपकी आशा मेरे जीवन में पूरी होगी, यह भी कौन कह सकता है ? फिर भी यह क्षुद्र कृति, जिसमें एक महान् आत्मा की वाणी निहित है, आपके चरणों में समर्पित है।

सेवक,

'सुमन'

पुस्तक के सम्बन्ध में—

ईसाई धर्मग्रन्थों में बाइबिल के बाद 'इमीटेशन' (Imitatio Christie) का सबसे अधिक आदर और प्रचार है; दुनिया की प्राय: सभी प्रधान भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं और अबतक लग-भग सात हज़ार संस्करण निकल चुके हैं। इसके एक-एक भाग दो-दो चार-चार आने से लेकर ९३००) तक में बिके हैं। इसका एक संस्करण पैरी में १८५५ में छपा और सिर्फ़ १०३ प्रतियों की छपाई में नौ लाख रुपये खर्च हुए। इन बातों से पता चलता है कि जनसमाज में इसका कैसा आदर और स्वागत हुआ है। इसके प्रभाव के सम्बन्ध में प्रो० हारनैक ने लिखा है—"यह हृदय में स्वतंत्र धार्मिक वृत्ति को प्रकाशित करता है; तथा ऐसी आग जलाता है जो अपनी निराली लपट के साथ जलती है।" ×

मूल पुस्तक लैटिन भाषा में लिखी गई थी। इसकी एक बहुत प्राचीन हस्तलिपि ब्रसेल्स के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसके अंत में लिखा है—"प्रभु के १४४१† संवत् में, ज़ोल (Zwolle)-निकटवर्त्ती माउण्ट सेण्ट ऐग्ने में धर्मबंधु टामस केम्पिस के हाथ से यह ग्रंथ पूर्ण हुआ।"

× "It kindles independent religious life, and a fire which burns with a flame of its own." What Is Christianity ? Page—266

† परन्तु इसकी २० और हस्तलिखित प्रतियां मिली हैं जो इससे भी पहले की हैं, जैसा कि हम आगे लिखेंगे।

इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है कि इस पुस्तक का लेखक असल में कौन है। बहुतों का कहना है कि पुस्तक के भिन्न-भिन्न भागों को कई ईसाई संतों ने समय-समय पर लिखा। टामस केम्पिस के हाथ से तो इसकी पुर्णाहुति हुई है। लगभग सवा तीन सौ वर्षों से इस बात को लेकर वाद-विवाद चलता रहा है। कहा जाता है कि कुछ हिस्सों के अनुवाद एक प्रान्तीय डच बोली में १४२३ में ही हो गये थे। पर साधारणतः टामस केम्पिस को ही लोग इसका प्रणेता मानते हैं।

इसकी सब से प्राचीन हस्तलिपि १४२४ ई० की मिलती है जिसमें केवल प्रथम खण्ड है। सम्पूर्ण पुस्तक की सब से प्राचीन प्रति १४२७ ई० की है। कुछ प्रतियां इससे भी प्राचीन बताई जाती हैं; हो भी सकती हैं पर उनमें सन्-सम्वत कुछ दिया नहीं है इसलिए निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

एक डच पादरी (Johann Van Schoonhoven) का लैटिन भाषा में एक पत्र मिला है। इसमें इस पुस्तक के प्रथम भाग का कुछ जिक्र है। उस पर से बहुतों ने यह अनुमान लगाया है कि प्रथम भाग केम्पिस का लिखा नहीं है; कहीं से लेकर उसने संग्रह कर दिया है। इस पत्र से इतना तो निश्चित हो जाता है कि 'इमीटेशन' (जीवन-सूत्र) के प्रथम भाग की रचना १३८२ और १४२४ ई० के बीच हुई है।

यह कहना भी मुश्किल है कि चारों खण्ड एक ही लेखक-द्वारा, या एक ही समय में, लिखे गये हैं। और भाग कब लिखे गये, इसका भी पता नहीं चलता। पुस्तक में प्रयुक्त मुहाविरों तथा उसकी भाषा से तो ऐसा मालूम होता है कि लेखक

टीटानिक जाति का था। फिर इस पुस्तक की लगभग ४०० प्राप्त हस्तलिपियों में ३४० टीटानिक देशों में मिली हैं। उनमें भी १००, और सब से प्राचीन, तो नेदरलैण्ड से ही प्राप्त हुई हैं। इन सब बातों का विचार करने पर कहा जा सकता है कि हालैण्ड में इस पुस्तक का सब से पहले और सब से ज्यादा प्रचार हुआ था।

फिर जिस मठ में केम्पिस रहता था वहाँ उसके जीवन-काल में तथा बाद भी लोग उसी को इस पुस्तक का लेखक मानते थे। उसके पास के एक मठ (Windesherm) के सदस्य बूश (Busch) ने भी, जो उससे परिचित था, उसे ही लेखक माना है।

इन बातों के अलावा केम्पिस की सब से पुरानी जीवनी १४९४ में छपी थी। इसकी हस्तलिपि १४८८ की मिलती है। अज्ञात जीवनी-लेखक लिखता है—"मुझे 'सेण्ट माउण्ट एग्ने' के मठ (जिस में केम्पिस रहता था) के बन्धुओं से, जीवनी की बहुत-सी सामग्री प्राप्त हुई है।" यह जीवनी केम्पिस की मृत्यु के चन्द वर्षों बाद ही लिखी गई। १४७१ ई० में केम्पिस का देहावसान हुआ। जीवनी की १४८८ की हस्तलिपि प्राप्त है। इसलिए इसे प्रामाणिक मानना ही चाहिए। इस लेखक ने 'जीवन-सूत्र' (इमीटेशन) के तीसरे खण्ड को केम्पिस का लिखा बताया है। इसके अलावा उसने उसकी लिखी ३८ और पुस्तकों के नाम दिये हैं जिनमें कई छोटी पुस्तकों में 'इमीटेशन' (जीवन-सूत्र) बिखरा हुआ है। इन बातों से तो यही सिद्ध होता है कि इसका लेखक केम्पिस ही है।

इसका प्रथम संस्करण छप कर १४७१ ई० में प्रकाशित हुआ। स्वर्गीय प्रो० डंमम ने पहली बार अंग्रेजी भाषा में इसका अनुवाद किया। तब से इसके कई अनुवाद प्रकाशित हुए हैं।

× × ×

टामस केम्पिस का जन्म, कोलंग से ४० मील दूर डूसों-लडरक नामक नगर के पास राइन एवं म्यूस नदियों के बीच बसे 'केम्पन' क़सबे में, १३८० में हुआ था। पिता का नाम गरट्रूड हेमार्किन था। केम्पिस का असली नाम टामस हेमार्किन था। यह एक धार्मिक कुटुम्ब था। हेमार्किन के दो पुत्रों (जान तथा टामस केम्पिस) ने अपना सारा जीवन आध्यात्मिक विभूतियों की प्राप्ति में लगा दिया। टामस केम्पिस ने आचारिक साधना के साथ ही जीवन में आन्तरिक अनुभूतियों को प्रधानता दी। इसीलिए इस पुस्तक की अधिकांश बातें न केवल ईसाई धर्म-भावना के अनुकूल हैं वरन् अन्य धर्मों की उच्च भावनाओं को भी प्रकट करती हैं।

'क्राइस्ट का अनुकरण' (Imitatio Christie) नाम भ्रमात्मक है। इस नाम के ऊपर अनेक विद्वानों ने आक्षेप किया है। क्योंकि इसमें सार्वदेशिक सदाचार एवं भक्तितत्त्व के भी अनेक सिद्धान्त निहित हैं। कई पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में 'म्यूजिका एकलेजियास्टिका' (धर्म मन्दिर-गायन) के नाम से भी इसका उल्लेख किया गया है।

× × ×

इस पुस्तक से मेरा प्रथम परिचय, प्रायः दस वर्ष पहले असहयोग-आन्दोलन के समय बनारस जिला-जेल में हुआ।

उन दिनों जेल में बाक़ायदा गाँधी-आश्रम स्थापित हुआ था और आचार्य कृपलानी हम लोगों को इस पुस्तक के चुने हुए अंश सुनाते और उनकी व्याख्या करते थे। तभी से मेरे हृदय में इसका अनुवाद करके हिन्दी पाठकों के सामने रखने का भाव पैदा हुआ परन्तु बीच में अन्य अनेक कार्यों में लग जाने के कारण, इच्छा होते हुए भी, इधर ध्यान न दे सका। गत वर्ष के अन्तिम भाग में मैंने इसके प्रथम खण्ड का अनुवाद बीमारी की अवस्था में पड़े-पड़े किया था। इसलिए इस वर्ष सत्याग्रह-आन्दोलन में बन्दी होकर आने के बाद मैंने अपने जेल-जीवन को इसकी पूर्ति में लगाया और फल-स्वरूप पुस्तक जनता के सामने उपस्थित है।

मैंने इस पुस्तक का अविकल अनुवाद नहीं किया है। जो बातें अन्य धर्मावलम्बियों के लिए भी कल्याणकर हो सकती हैं, उन्हें ही मैंने लिया है। ईसाई पौराणिक बातों को छोड़ दिया है। कई अध्याय छूट गये हैं तथा चौथा खण्ड तो बिलकुल ही छोड़ दिया गया है। अन्य विद्वानों की तरह मुझे भी इसका प्रचलित नाम भ्रमात्मक मालूम हुआ; फिर इतनी काट-छाँट के बाद इसका रूप और ज़्यादा बदल चुका था और चूँकि इसमें जीवन के उत्थान के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्तों का उपदेश किया गया है, इसलिए मैंने इसका नाम 'जीवन-सूत्र' रक्खा है।

इस पुस्तक में सदाचार एवं भक्ति-तत्त्व की प्रधानता है। अनेक जगह इसकी शिक्षायें गीता तथा अन्य हिन्दू सद्ग्रन्थों से मिलती-जुलती हैं। इसमें भी अनेक स्थानों पर ईश्वरीय वाणी का आभास मिलता है। इससे हृदय को बल मिलता है; आचारों का परिष्कार होता है तथा आध्यात्मिक एवं पवित्र सदाचारमय

जीवन की ओर बढ़ने की व्याकुलता उत्पन्न होती है। इसलिए नवयुवकों एवं नवयुवतियों के लिए यह विशेष लाभ की चीज़ होगी, इसमें मुझे संदेह नहीं है।

अंग्रेजी भाषा में इसके जो अनुवाद हुए हैं वे पुराने ज़माने की अंग्रेजी में हैं।। तब से आज अंग्रेजी भाषा का रूप बहुत बदल गया है। शब्दों के उच्चारण, व्युत्पत्ति, 'स्पेलिंग' तथा प्रायः अर्थ में भी पहले से अन्तर पड़ गया है। इसलिए इस पुस्तक का अनुवाद करने में बड़ी कठिनाइयाँ आती हैं फिर भावों में उलट-पुलट न हो जाय, इसका मैंने बहुत ध्यान रक्खा है।

इस पुस्तक का बँगला में जो अनुवाद आचार्य लक्ष्मीप्रसाद चौधरी ने किया है, वह मूल से अनेकांश में भिन्न है। उससे भी मैंने कहीं-कहीं सहायता ली है।

यदि इससे थोड़े भाई-बहनों के जीवन पर भी अच्छा असर पड़ा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

सेण्ट्रलजेल,
अजमेर
१-६-३२

श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

प्रथम खण्ड : साधना का पथ ३-७८

अध्याय	विषय	पृष्ठ

अध्याय	विषय	पृष्ठ

जीवन-सूत्र

'इमीटेशन ऑव् क्राइस्ट' का स्वतन्त्र अनुवाद

—श्री रामनाथ 'सुमन'

प्रथम खण्ड

साधना का पथ

[१]

अनासक्ति

बड़ी-बड़ी बातें करने से कोई आदमी पवित्र और सदाचारी नहीं होता; निर्मल जीवन ही मनुष्य को भगवान् का प्यारा बनाता है।

मैं पश्चात्ताप की परिभाषा जानने की अपेक्षा उसका अनुभव करने की इच्छा अधिक रखता हूँ।

यदि संसार के सब धर्मग्रंथ तुझे कण्ठस्थ हैं और तू सब तत्त्वज्ञानियों की शिक्षाओं से परिचित है तो इससे क्या लाभ, यदि उसके साथ ही शील और उदारता को तूने नहीं अपनाया।

भगवान् के प्रेम और सेवा के अतिरिक्त संसार की अन्य सब वस्तुयें मिथ्या हैं और उनपर गर्व करना अहंकार है।

संसार के प्रति अनासक्ति रखना ही मनुष्य के लिए सब से बड़ा ज्ञान है; इससे वह स्वर्ग-राज्य के निकट पहुँचता है। नाशमान् धन-वैभव की खोज करना और उनमें विश्वास रखना अहंकार है।

यश की इच्छा और ऊँची पद-मर्यादा का लोभ भी छूछा है और अहंकार प्रकट करता है।

और हाड़-मांस (शरीर) की वासनाओं का अनुगमन करना तथा ऐसी वस्तुओं की प्राप्ति की चिन्ता, जिनका कुफल आगे भोगना पड़ेगा, भी तो माया और अहंकार है !

दीर्घ जीवन की कामना करना और अच्छे एवं पवित्र जीवन से उदासीन रहना मूर्खता और अहंकार है !

और सिर्फ वर्तमान जीवन पर ध्यान देना और जो-कुछ आगे आने वाला है, उसकी परवा न करना भी मनुष्य का मिथ्या अहंकार है ।

और जो वस्तुयें नाशमान हैं तथा जिनका रूप प्रत्येक क्षण तेजी के साथ बदल रहा है उनमें आसक्त रहना तथा अमृत के उस झरने की ओर अग्रसर न होना, जहाँ चिर-आनन्द का निकेत है, मनुष्य का मिथ्या अहंकार है ।

इस लोकोक्ति का हमेशा ध्यान रख कि आँख देखने से और कान सुनने से भरे न हों (अर्थात् दृश्य एवं श्रव्य के प्रति आसक्ति न हो) ।

इसलिए दृश्यमान् वस्तुओं से हृदय हटाकर अदृश्य में अपने को नियोजित करने का अभ्यास कर ।

जो लोग अपनी कामनाओं के पीछे दौड़ते हैं, अपने अन्तःकरण को मैला और धुँधला कर लेते हैं और ईश्वरीय विभूति से हाथ धो बैठते हैं ।

[२]

'स्व' का नम्र ज्ञान

प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः ज्ञान प्राप्त करना चाहता है; किन्तु भगवान् के भय एवं दैवी शील से रहित ज्ञान का मूल्य क्या है?

निश्चय ही वह ग़रीब हलवाहा, जो भगवान् की सेवा करता है, उस अभिमानी तत्त्वज्ञानी से कहीं अच्छा है जो अपने निजी जीवन की बुराई-भलाई की ओर से आँखें मींचकर स्वर्ग की खोज और उसके मार्गों की विवेचना में मस्त रहता है।

जो अपने को भली प्रकार जान लेता है अपनी दृष्टि में बहुत तुच्छ जँचता है और मनुष्यों-द्वारा की हुई अपनी प्रशंसा में उसे आनन्द नहीं आता।

यदि मैंने संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया किन्तु दूसरों के साथ उदार व्यवहार करना न सीखा तो उस ज्ञान से क्या हुआ? ईश्वर के सामने फिर कौन-सी चीज़ मेरी सहायता करेगी? क्या (केवल ज्ञानी होने के कारण) वह मुझे मेरे कर्मों के अनुसार फल न देगा?

तू ज्ञान-संचय की अत्यधिक कामना से बचता रह क्योंकि इससे तू भटक जायगा और आत्म-वंचना के रास्ते पर जा पड़ेगा।

जो ज्ञानी हैं, सहज ही पहचान लिये जाते हैं और दुनिया उन्हें बुद्धिमान कहती है किन्तु दुनिया में ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिनकी जानकारी से आत्मा को कुछ लाभ नहीं पहुँचता या पहुँचता भी है तो बहुत थोड़ा। वह निपट मूर्ख है जो अपनी आत्मा के स्वास्थ्य की अपेक्षा दुनिया की और चीजों में अधिक समय लगाता है।

आत्मा की प्यास बड़ी-बड़ी बातों से नहीं बुझती, सदाचारमय जीवन से ही मन को शान्ति मिलती है। पवित्र और शुद्ध अन्तःकरण ईश्वर में हमारे विश्वास को दृढ़ करता है।

यदि कर्तृत्व शक्ति प्राप्त करने के साथ ही तूने अपना जीवन पवित्र नहीं बनाया तो तू अपने कामों का दायरा जितना बढ़ायेगा और उन्हें जितनी सुघड़ता के साथ करने की चेष्टा करेगा उतना ही अपनी आत्मा को गिरायेगा। इसलिए कौशल या जानकारी के लिए इतना उत्सुक मत बन बल्कि इस प्रकार का जो ज्ञान तुझे मिले उससे सावधान रह।

यदि ऐसा मालूम पड़ता हो कि तुझे बहुत अधिक चीजों का ज्ञान है और उनके विषय में तू काफ़ी अनुभव रखता है तो भी तुझे विश्वास रखना चाहिए कि दुनिया में बहुत-सी ऐसी चीजें हैं जिनके बारे में तू कुछ नहीं जानता।

अपने को बहुत बड़ा बुद्धिमान न समझ ले बल्कि अपने अज्ञान और अपनी छोटाई को स्वीकार करता रह।

तू दूसरों पर अपने को तरजीह क्यों देता है जब ईश्वरीय ज्ञान में तेरी अपेक्षा ज्यादा जानकार लोग दुनिया में पाये जाते हैं?

यदि तू किसी वस्तु को फायदे के साथ सीखना और जानना चाहता है तो अपने को बहुत छिपाकर रख और अपने को नगण्य समझ।

सब से ऊँचा और लाभदायक ज्ञान यही है, अपने को जानना और अपनी तुच्छता एवं नगण्यता का अनुभव करना। एक मनुष्य के लिए, अपने को महत्व न देकर, सदा दूसरों को अच्छा समझना और उनके कल्याण की चिन्ता करते रहना ही श्रेष्ठ ज्ञान और मानवीय पूर्णता है।

यदि तू किसी को खुल्लम-खुल्ला पाप करते या भयंकर कुकर्मों में लिप्त देखता है तो तू अपने को उससे अच्छा समझकर उनकी हँसी न उड़ा क्योंकि तू नहीं जानता कि कबतक तू सत्कर्मों में अपने को लगाये रख सकेगा।

हम सभी अत्यन्त निर्बल प्राणी हैं किन्तु तू अपने से अधिक निर्बल और किसी को न समझ!

[३]

सत्य-शिक्षण

वह आनन्दमय है जिसे सत्य स्वयं शिक्षा देता है; शब्दों और आँकड़ों-द्वारा नहीं वरन् अपने असली रूप में प्रकट होकर।

हमारी सम्मतियाँ और हमारी भावनायें अक्सर हमें धोखा देती हैं और असलियत को बहुत कम देख पाती हैं।

गुप्त और अन्धकारमय चीज़ों की इतनी खोज किसलिए? यदि हमने उन्हें नहीं भी जाना तो ईश्वर अपने फैसले में इसके लिए हमें दोषी नहीं ठहरावेगा।

हाय, यह कैसा अज्ञान है कि हम, उपयोगी और आवश्यक वस्तुओं की तो परवा नहीं करते पर असाधारण, आश्चर्यजनक और हानिकर चीज़ों पर बहुत ज्यादा ध्यान देते हैं। आँखें होते हुए भी हम देखते नहीं!

जिसे अनन्त शब्द (ईश्वर की वाणी) स्वयं पुकारता है, उसका रास्ता सरल हो जाता है और वह सम्मतियों एवं कामनाओं के जाल से मुक्त हो जाता है। उस एक शब्द से ही सब वस्तुयें प्रकट होती हैं और सब वस्तुयें वह एक ही शब्द बोलती हैं। यही वह सच्चा आरम्भ है जो हमसे बोलता है,

हमें सिखाता है। उसके बिना कोई ठीक-ठीक न तो समझता है, न पवित्रतापूर्ण निर्णय ही कर सकता है।

जिसके लिए सब वस्तुयें एक हैं—समान हैं और जो सब वस्तुओं को एक में ही नियोजित करता है और एक में सबको देखता है, स्थितप्रज्ञ हो सकता है और वह शान्तिपूर्वक ईश्वर में निवास करता है।

हे सत्य के देवता ! चिरन्तन प्रेम के सूत्र से बाँधकर हमें अपने से अभिन्न कर ले !

बहुत-सी बातें सुनते और पढ़ते-पढ़ते मैं ऊब जाता हूँ; हे प्रभु ! जो कुछ मैं चाहता हूँ या जिनकी दृढ़ इच्छा करता हूँ वे सब तो तेरे ही अन्दर विद्यमान हैं।

तेरे समक्ष सब प्रकार के उपदेष्टा शान्त हैं और सब प्रकार के प्राणी मौन। देव ! तू मुझसे एकान्त में बोल !

मनुष्य अन्तर में तुझसे जितना ही अभिन्न हो चुका है उतनी ही अधिक मात्रा में और उतनी ही श्रेष्ठता के साथ वह जगत् की नानाविध वस्तुओं को जानता है क्योंकि वह अपने ज्ञान का प्रकाश ऊपर से पाता है।

एक पवित्र, सरल और स्थिर आत्मा विविध कर्मों के बीच भटक नहीं जाता क्योंकि वह सभी काम ईश्वर के निमित्त करता है और अपने ज्ञान के विषय में की जानेवाली सब प्रकार की पूछताछ के सम्बन्ध में अपने को पूर्ण उदासीन और निश्चल रखने का प्रयत्न करता है।

तेरे असंयमित और बेकाबू मनोविकारों से अधिक तेरी उन्नति में बाधक और तुझे दुःख देनेवाली और कौन चीज है ?

एक अच्छा और धर्मात्मा मनुष्य जिन कामों को बाहर करने की सोचता है उन्हें पहले अन्दर ही साध लेता है। ये सब कर्म उसे दुष्ट प्रवृत्तियों की ओर नहीं ले जा सकते क्योंकि वह विवेकपूर्ण निर्णय के प्रकाश में उन कर्मों को करता है।

अपने मन पर विजय पाने में जो अपनी शक्ति लगाता है उससे अधिक घोर युद्ध किसे करना पड़ता है? पर हमारा काम यही होना चाहिए कि हम अपने ऊपर विजय पा लें और प्रति दिन अपने मन पर अधिकाधिक अंकुश रखते हुए सत्कर्म की शक्ति प्राप्त करें।

इस संसार की सब प्रकार की पूर्णता के साथ एक प्रकार की अपूर्णता लगी रहती है। और हमारी कल्पनायें किसी न किसी तरफ़ से अन्धकार से आच्छादित हुए बिना नहीं रहतीं।

अपने विषय में नम्र ज्ञान, भगवान् को जितना प्रिय है उतना ज्ञान की गहरी खोज नहीं है।

ज्ञान अथवा वस्तुओं की सीधी-सादी जानकारी निन्दनीय नहीं है क्योंकि वह स्वतः अच्छी चीज है और भगवान्-द्वारा समर्थित भी है किन्तु पवित्र अन्तःकरण और पवित्र जीवन को सदा उस पर तरजीह देनी चाहिए।

चूँकि अधिकांश मनुष्य पवित्र जीवन बिताने के लिए नहीं, ज्ञान प्राप्त करने के लिए अध्ययन और अभ्यास करते हैं इसलिए प्रायः वे गलती कर बैठते हैं और उन्हें या तो उस ज्ञान का बिलकुल लाभ नहीं मिलता या मिलता है तो बहुत कम।

ओः! यदि मनुष्य दुर्गुणों और पापों को उन्मूल करने एवं सद्गुणों और सत्कर्मों को रोपने इतना ध्यान देता जितना

वह बहस-मुबाहिसे और प्रश्नों में देता है तो हम लोगों में इतनी दुष्टता न होती, न मठों एवं मन्दिरों में इतनी सदाचारहीनता दिखाई पड़ती।

निश्चय ही अन्तिम निर्णय के दिन हमसे यह नहीं पूछा जायगा कि हमने क्या पढ़ा है वरन् यह कि हमने क्या किया है? हमने लोगों से क्या अच्छी बातें कही हैं इसकी पूछ नहीं होगी; पूछ इसकी होगी कि हमने अपना जीवन कितनी पवित्रापूर्वक बिताया है!

तू मुझे बता दे कि वे बड़े-बड़े सरदार और शक्तिमान पुरुष आज कहाँ हैं जिनकी एक दिन तूती बोलती थी? आज उनकी जगह दूसरे आदमी आ गये हैं और मुझे नहीं मालूम कि वे उन पहले के सत्ताधारियों के विषय में कभी सोचते भी हैं या नहीं! अपने जीवन-काल में वे किस चहल-पहल के साथ रंग-मंच पर आये; आज यह हाल है कि कोई उनकी चर्चा तक नहीं करता। हे प्रभो! इस संसार की विभूतियों का कितनी जल्दी अन्त हो जाता है!

भगवन्! उनका जीवन यदि उनके ज्ञान, के अनुरूप ही उज्ज्वल होता (तो कैसा सुन्दर होता) क्योंकि उन्होंने भलीभांति परिश्रमपूर्वक अध्ययन किया था।

न जाने कितने ऐसे होंगे जो अपने मिथ्याज्ञान और भगवत्सेवा के प्रति अपनी लापरवाही के कारण संसार में नष्ट हो जाते हैं वे नम्र और दीन की अपेक्षा (भौतिक दृष्टि से) शक्तिमान् और महान् होना ही ज्यादा पसन्द करते हैं, इसलिए स्वयं अपने ही विचारों में वे डूब जाते हैं!

निश्चय ही वह व्यक्ति महान् है जो भीतर से अपने को बहुत छोटा और नम्र अनुभव करता है और सब प्रकार के यश की ऊँचाई जिसके लिए निस्सार है। वह अवश्य ही महान् है जिसमें महान् उदारता है। वही सच्चा बुद्धिमान् है जो भगवत्प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण सांसारिक वस्तुओं को, बदबूदार गोबर के समान समझकर, छोड़ देता है। और वह निश्चय बहुत बड़ा ज्ञानी है जो अपनी इच्छाओं को त्यागकर भगवान् की इच्छा का अनुसरण करता है।

[४]

मानव-कर्म में विवेक

किसी मनुष्य के प्रत्येक शब्द और प्रत्येक प्रेरणा को ठीक समझ लेना भूल है। प्रत्येक बात को ईश्वरीय आज्ञाओं के प्रकाश में, शान्ति एवं स्थिर मन से तौलना चाहिए।

आह, अच्छाई की अपेक्षा दूसरों की बुराई पर हम ज्यादा विश्वास कर लेते हैं; हम कैसे दुर्बल प्राणी हैं!

पर जो विवेकवान हैं वे मनुष्य की कही हुई सब बातों पर इतने हलकेपन से विश्वास नहीं कर लेते; वे जानते हैं कि मनुष्य की दुर्बलता दोषोद्भावना के लिए बहुत जल्द तैयार हो जाती है और उसके शब्द पतनशील होते हैं।

इसी तरह प्रत्येक मनुष्य की बातों पर झट विश्वास न कर लेना चाहिए और न दूसरों से ऐसा कहना चाहिए कि हमने ऐसा सुना है-वैसा सुना है और ऐसा हमारा भी शक है।

अपने मामलों में सदा एक बुद्धिमान् और चरित्रवान मनुष्य से सलाह ले और अपनी कल्पनाओं का अनुगमन करने की अपेक्षा अपने से अच्छे आदमियों से शिक्षा ग्रहण करने की अधिक चिन्ता कर।

पवित्र जीवन भगवान् की निगाह में मनुष्य को ऊँचा उठाता है और बहुत-सी चीजों के सम्बन्ध में उसे विशेषज्ञ बनाता है।

मनुष्य जितना ही नम्र होगा और भगवान् के चरणों में जितना ही आत्मसमर्पण करेगा उतना ही वह सब विषयों में धीर और बुद्धिमान् बनता जायगा।

धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन

सत्य की खोज वाग्मिता में नहीं, पवित्र धर्म-ग्रन्थों में करनी चाहिए और प्रत्येक धर्म-ग्रन्थ उसी भाव से पढ़ा जाना चाहिए जिस भाव से वह लिखा गया है।

धर्म-ग्रन्थों में हमें भाषा-सौष्ठव की अपेक्षा कल्याण और लाभ की अधिक खोज करनी चाहिए।

हमें सरल और पवित्र पुस्तकों का पारायण उसी प्रसन्नता से करना चाहिए जैसे उच्चकोटि के ग्रन्थों एवं भावपूर्ण गम्भीर वाक्यों का।

रचनाकार की प्रसिद्धि-अप्रसिद्धि को देखकर ग्रन्थ के विषय में तुझे अपने भाव नहीं बनाने या बदलने चाहिएँ। शुद्ध सत्य-प्रेम या ज्ञानार्जन के भाव से ही तुझे भगवत्प्रेम की ओर आकर्षित होना चाहिए।

यह न पूछ कि इसका कहनेवाला कौन है, इसपर विचार कर कि वह क्या कहता है। मनुष्य का एक दिन अन्त हो जाता है पर ईश्वरीय सत्य चिरन्तन है।

व्यक्तियों के प्रति आग्रह (आसक्ति) छोड़कर देखें तो मालूम होगा कि भगवान् हमसे नानारूपों और विधियों में बोलता है।

धर्मग्रन्थों के अध्ययन में हमारी उत्कण्ठा हमें प्रायः धोका देती है क्योंकि उसके कारण हम आश्चर्यप्रद की खोज में लग जाते हैं जब कि ऐसी बातों की ओर ज्यादा ध्यान न देना चाहिए।

यदि तू अध्ययन से लाभ उठाना चाहता है तो नम्रता, सरलता और सच्चाई के साथ उसे पढ़, लोगों की दृष्टि में ज्ञानी बनकर नाम कमाने के लिए नहीं।

जो पूछ प्रसन्नतापूर्वक पूछ और उत्तर शान्त एवं स्थिर चित्त से सुन।

वृद्धजनों के रूपकों पर क्रोध न कर क्योंकि वे अकारण ही ये उदाहरण नहीं देते।

[६]

अनुचित राग

जब कोई आदमी किसी वस्तु की अनुचित वाञ्छा करता है या उसके प्रति अपवित्र आग्रह रखता है तो उसका हृदय अशांत हो जाता है।

अभिमानी और लोभी को कभी शान्ति नहीं मिलती। दीन और नम्र भावनावाले शान्ति के विशाल क्षेत्र में विचरते हुए आनन्द उठाते हैं।

जिस मनुष्य की वासनायें बिलकुल मर नहीं गई हैं वह प्रलोभनों का शिकार हो जाता है और बहुत छोटी तथा नगण्य वस्तुयें उसपर हावी हो जाती हैं।

जिसका अन्तःकरण दुर्बल है फिर भी जिसमें भोग्य वस्तुओं की ओर शारीरिक झुकाव है वह सरलतापूर्वक सांसारिक वासनाओं से अपने को पूर्णतः मुक्त नहीं कर सकता और जब कभी वह इन वासनाओं से कुछ हटता भी है तो मन ही मन दुखी-सा रहता है और जब कभी उसकी इच्छा-पूर्त्ति के मार्ग में कोई बाधक होता है तो वह उससे घृणा करने लगता है।

यदि वह इच्छित वस्तु पा जाता है तो भी रह-रह कर उसके अन्तःकरण में काँटा-सा खटकता है कि मैंने अपनी उद्दाम

वासनाओं का अनुगमन किया जिससे हमारी उद्दिष्ट शान्ति की प्राप्ति में कुछ सहायता न मिली। इससे सिद्ध होता है कि वासनाओं की विजय से ही हृदय को शान्ति मिलती है, न कि उनके अधीन हो जाने से।

इस वास्ते रूप-लोभी या शरीर-संगी मनुष्य के हृदय में शान्ति नहीं बसती, न उसमें ही शान्ति होती है जो केवल बाह्य एवं स्थूल वस्तुओं में ही निरत रहता है। शान्ति केवल सच्चे आध्यात्मिक मनुष्य को मिलती है।

[७]

झूठी आशा और सुख का त्याग

जो मनुष्यों एवं प्राणियों में अपनी आशा लगाये रहता है, वह भूल करता है।

भगवान् के प्रेम के लिए, दूसरों की सेवा करने एवं संसार के सामने ग़रीब दिखने में शर्मिन्दा न हो। अपने बल पर बहुत अधिक विश्वास न कर, भगवान् में आस्था रख। जो तेरे अन्दर अच्छा बोध होता है उसे कर, ईश्वर तेरी शुभेच्छा के नजदीक ही है।

अपने ज्ञान या किसी जीवित प्राणी की चतुरता पर बहुत ज्यादा न फूल बल्कि भगवान् में विश्वास रख जो सदा नम्र एवं दीन प्राणियों की सहायता करता है और जो अपने को बहुत बड़ा समझ लेते हैं उनका अहंकार दूर करता है।

यदि तेरे पास सम्पत्ति है तो उस पर न फूल और न अपने शक्तिमान मित्रों के बल पर इतरा। केवल उस भगवान् में विश्वास रख जो सब वस्तुओं का दाता है और इन सब वस्तुओं के साथ अपने को भी दे देने की इच्छा रखता है।

संसार में बड़ाई या यश के लिए चेष्टा न कर और न शरीर की

उस सुन्दरता के लिए पागल हो जो ज़रा-सी बीमारी से भद्दी और नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है।

अपनी योग्यता या चतुराई पर घमण्ड न कर, इससे तू भगवान् को अप्रसन्न करेगा, स्मरण रख कि तेरे अन्दर जो-कुछ अच्छा है, सब भगवान् से ही तुझे मिला है।

दूसरों से अपने को अच्छा मत समझ। कौन जाने भगवान् के सम्मुख तू ही सबसे बुरा निकले क्योंकि वह तो मनुष्य के भीतर की सब बातें जानता है।

सत्कर्मों पर गर्व मत कर। मनुष्य का निर्णय कुछ होता है, ईश्वर का कुछ होता है। अकसर जो बातें हमें प्रिय लगती हैं वही भगवान् को अप्रिय होती हैं।

यदि तुझमें कुछ सद्गुण हैं तो समझ कि दूसरे में तुझसे भी अच्छे गुण हैं। इससे तू अपनी शान्ति और नम्रता को क़ायम रख सकेगा।

यदि तू अपने को सबसे तुच्छ समझेगा तो इसमें तेरी हानि नहीं है और यदि तू अपने को सबसे ऊँचा या आगे समझ लेगा तो इससे तेरी उन्नति में अधिक बाधा पड़ेगी।

स्थायी शान्ति नम्र और दीन मनुष्य की संगिनी है। अभिमानी मनुष्य के हृदय में प्रायः विद्वेष और असन्तोष निवास करते हैं।

[८]

अत्यधिक घनिष्टता का त्याग

प्रत्येक मनुष्य को अपना हृदय मत दिखा। जो विवेकी है और भगवान् से डरता है उसके सामने अपनी समस्यायें रख।

अपरिचित एवं छोटी आयु के आदमियों के बीच बहुत कम रह।

धनवानों की चापलूसी न कर; बहुत बड़े आदमियों के सामने न जा। नम्र, सरल और दीन मनुष्यों का साथ कर। ऐसी वस्तुओं को व्यवहार में ला जिनसे तेरी नैतिक उन्नति हो।

किसी स्त्री से बहुत ज्यादा घनिष्ठता न रख। सब सु-नारियों के कल्याण के लिए भगवान् से निवेदन कर।

भगवान् और उसके फरिश्तों से परिचय प्राप्त करने की इच्छा रख और सांसारिक ज्ञान का त्याग कर। सब प्राणियों के प्रति उदार बन पर घनिष्ट बनने की चेष्टा न कर।

कभी-कभी ऐसा होता है कि एक अज्ञान मनुष्य अपने उज्ज्वल यश के कारण चमकता है जिसकी उपस्थिति दर्शकों की आँखों को अन्धा कर देती है। हम एक साथ रहकर अपने सहयोग के भावों से प्रायः दूसरों को खुश रखने की आशा करते हैं किन्तु अपने अन्दर की बुराइयों और अनीश्वरीय कृत्यों एवं प्रवृत्तियों से प्रायः उन्हें नाराज कर देते हैं।

[९]

आज्ञा-पालन और अधीनता

मनुष्य के लिए यह एक बहुत अच्छी बात है कि वह एक पथ-प्रदर्शक की आज्ञाकारिता में रहे और उसके आदेशानुसार जीवन बितावे, न कि मनमाना चले। उच्छृङ्खल होने की अपेक्षा अधीनता में रहना कम ख़तरनाक है।

बहुत-से लोग ऐसे हैं जो उदारतापूर्वक अपनी इच्छा से नहीं, वरन् आवश्यकता से विवश होकर अधीनता स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लोग कष्ट पाते हैं, व्यथित होते हैं और शीघ्र ही ऊबकर शिकायत करने लगते हैं। ऐसे लोग तब तक मन की स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर सकते जबतक वे सच्चे हृदय से अपनेको सम्पूर्णतः ईश्वरार्पण न कर दें।

यहाँ-वहाँ चाहे जहाँ दौड़, तुझे तबतक हरगिज़ शान्ति न मिलेगी जबतक किसी धर्मात्मा पथ-प्रदर्शक के प्रति नम्र आज्ञाकारिता की प्रवृत्ति को तू नहीं अपनाता। कोरी कल्पना और स्थान-परिवर्तन ने बहुतों को धोखा दिया है।

यह सत्य है कि बुद्धि के अनुसार प्रत्येक मनुष्य उन लोगों की ओर आकर्षित होता है जो उस-जैसे विचार रखते या अनु-

भव करते हैं किन्तु यदि हमारे बीच ईश्वर है तो कभी-कभी हमारे वास्ते जरूरी हो जाता है कि शान्ति एवं महत्तर हित के लिए हम अपनी इच्छाओं का त्याग करें।

दुनिया में कौन ऐसा बुद्धिमान है जो सब वस्तुओं को पूरी तरह जानता है ? इसलिए तू अपनी अनुभूतियों एवं भावनाओं में बहुत अधिक विश्वास न करले। यदि तेरी भावनायें शुभ हैं और तू ईश्वर के लिए उनका त्याग करके दूसरे की इच्छाओं का अनुसरण करता है तो उससे अन्त में तेरा लाभ ही अधिक होगा।

मैंने अक्सर सुना है कि उपदेश और सलाह देने की अपेक्षा, दूसरों के उपदेश सुनना और सलाह लेना ज्यादा कल्याण-कारी है।

यह तो अच्छा है कि प्रत्येक मनुष्य ऊँची बातों का अनुभव करे और उसके अपने अच्छे विचार हों किन्तु जब विवेक और तथ्य का तकाजा हो, किसी मनुष्य का किसी प्रकार भी दूसरों से मत-भेद दूर करने के लिए राजी न होना उसके अहंकार और कट्टरता का चिन्ह है।

[१०]

वाणी का दुरुपयोग

शोर-गुल, बक-बक और विवाद को तू जिस सीमा तक छोड़ सके, छोड़ दे। क्योंकि लौकिक कर्मों के बारे में बहुत ज्यादा बात करना, फिर चाहे वह सदिच्छा से ही प्रेरित क्यों न हो, सच्ची उन्नति में बाधक है; इससे हम बहुत जल्द अशुद्ध—अपवित्र होते हैं और अहंकार के मार्ग पर फिसल जाते हैं।

मेरी बहुत बार इच्छा होती है कि आदमियों की भीड़ से दूर चुपचाप एक कोने में पड़ा रहता और अपने हृदय की शान्ति सुरक्षित रखता। पता नहीं कि जब हम प्रायः आत्मिक हानि करके घर लौटते हैं तो इतना आनन्द-विभोर होकर क्यों बोलते हैं।

हम आपस में इतनी बातें इसीलिए करते हैं कि इस प्रकार की बातचीत में हम एक-दूसरे से सान्त्वना एवं सुख पाते हैं और अनेक प्रकार के विचारों एवं भावों से थके हुए हृदय को इससे आराम मिलता है। हम ज्यादातर ऐसी ही चीजों के बारे में बात करते हैं जो हमें प्रिय होती हैं या जिनकी

हम अभिलाषा रखते हैं या जो हमारे विरुद्ध पड़ती हैं किन्तु दुःख है कि ये बातें प्रायः व्यर्थ और अनुपयोगी होती हैं क्योंकि इस प्रकार का बाह्य सुख आन्तरिक और स्वर्गीय शान्ति में बाधक है इसलिए हमें इस मोह-निशा में जागना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि हमारा समय व्यर्थ न बीते।

यदि बोलना उचित और आवश्यक ही मालूम पड़े तो ऐसी चीजों के बारे में बोल जिनसे आत्मा की उन्नति होती है। शब्दों का अपव्यय और आत्म-निरीक्षण का अभाव ही मुख का बुरा उपयोग करना सिखाते हैं। हाँ, आध्यात्मिक सत्संग और चर्चा से आत्मिक उन्नति में बड़ी सहायता मिलती है।

[११]

शान्ति और कल्याण के उपाय

यदि हम दूसरों के उन कर्मों और वचनों की आलोचना के फेर में न पड़ें, जिनका हमारी चिन्ता से कोई सम्बन्ध नहीं है तो हम काफी शान्ति-लाभ कर सकेंगे। जो दूसरों की बातों में दस्तन्दाजी करता है, जो बाह्य सुविधाओं के पीछे पागल रहता है और अपने अन्दर की सत्-शक्तियों को एकत्र नहीं करता, वह कितने दिनों तक शान्ति से रह सकता है ?

सरल आदमियों का हृदय आनन्दमय होता है क्योंकि सबसे अधिक शान्ति वही पाते हैं।

कुछ पवित्र एवं धर्मात्मा महापुरुष इतने पूर्ण एवं तत्त्व-निरत क्यों होते हैं ? इसीलिए कि उन्होंने सब प्रकार की सांसारिक कामनाओं से अपने को अलग रखना सीखा। वे अपनी रक्षा स्वयं कर सकते और अन्तःकरण की सम्पूर्ण गहराई से ईश्वर में अपने को निमग्न कर सकते हैं।

किन्तु हम तो अपनी वासनाओं में ही डूब रहे हैं और क्षण-स्थायी वस्तुओं में हमने अपने को बहुत अधिक फँसा लिया है।

यह बात भी है कि बहुत ही कम अवस्थाओं में हम अपने पापों को पूर्णतः कुचलने में समर्थ होते हैं; उस की जड़ भीतर रह जाती है। दिन-दिन नैतिक विकास के पथ पर हम बढ़ने नहीं पाते क्योंकि उसमें हमारा हृदय और उत्साह नहीं रहता और हम जल्द शिथिल पड़ जाते हैं।

यदि हम अपने अन्दर अपने (क्षुद्र 'स्व') को बिलकुल मिटा दें (अर्थात् वासनाओं पर विजय प्राप्त कर लें) और बाह्य—दुनियावी—वस्तुओं के जाल में अपने को बहुत अधिक न फँसा लें तो हम दैवी-सम्पद् का स्वाद ले सकते हैं और ईश्वरीय ध्यान के सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

सब से बड़ी बाधा जो हमारे नैतिक उत्थान में पड़ती है, यह है कि हम शारीरिक वासनाओं और दुनियावी प्रलोभनों से मुक्त नहीं होते और न हम सन्तों और पवित्र आत्माओं के मार्ग पर चलने के लिए अपने पर कोई दबाव ही डालना चाहते हैं।

यह बात भी है कि जब हम पर कोई छोटी विपत्ति भी आ जाती है तो हम घबड़ा जाते हैं और ऐसे समय मानवी सुख एवं समवेदना के लिए उद्विग्न हो उठते हैं।

यदि हम जीवन-युद्ध में भलीभांति वीरों एवं शक्तिमानों की तरह दृढ़तापूर्वक खड़े हों तो हम देखेंगे कि स्वर्ग से ईश्वर की सहायता हमें मिल रही है क्योंकि ईश्वर उन सब की सहायता के लिए सदा तैयार रहता है जो उसके लिए लड़ते हैं और उसकी विभूति में जिनका विश्वास है। वह हमें कष्ट

भी इसीलिए देता है कि हमें (बुराइयों और कठिनाइयों से) युद्ध करने का मौक़ा मिले और हम (उन पर) विजय प्राप्त कर सकें।

यदि हम केवल बाहरी बातों और आचारों में धर्म का लाभ उठाते हैं तो हमारी भक्ति का अन्त बहुत जल्द हो जायगा। हमें तो बुराइयों के मूल पर ही कुठाराघात करना चाहिए ताकि अपनी वासनाओं से मुक्त होकर हम मन को शान्ति पाने योग्य बनायें।

यदि हम हर साल केवल एक बुराई को पूरी तरह निर्मूल कर दें तो बहुत शीघ्र हम एक पूर्ण मनुष्य बन जायँ किन्तु हम प्रायः इसके विरुद्ध ही अनुभव और आचरण करते हैं। जब हम किसी धर्म को कबूल करते हैं तो आरम्भ में जितने सच्चे और पवित्र होते हैं, वर्षों के धर्म-ग्रहण के बाद उतने भी नहीं रह जाते। होना तो यह चाहिए कि हमारे लाभ की पूँजी और उत्साह प्रतिक्षण बढ़े किन्तु आजकल तो यही बहुत मालूम पड़ता है कि आरम्भिक उत्साह का एक अंश भी अन्त तक क़ायम रह जाय।

यदि आरम्भ में हमारे आचरण में हिंसा का थोड़ा-बहुत अंश हो तो बाद में हमें इतना आत्म-विकास कर लेना चाहिए कि प्रत्येक काम को हम बिना किसी उत्तेजना के, सरलता और प्रसन्नता से कर सकें।

हम जिन चीज़ों के अभ्यस्त हो जाते हैं उन्हें छोड़ने में दुःख होता है; अपनी इच्छा के विरुद्ध आचरण करने में तो और भी पीड़ा होती है किन्तु यदि तू छोटी और हलकी चीज़ों

पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता तो कठोर और कठिन बातों पर कैसे विजय प्राप्त कर सकेगा ?

अपनी इच्छाओं और कुप्रवृत्तियों का मुक़ाबला कर और कुरीतियों को भूल जा अन्यथा धीरे-धीरे ये तुझे अधिकाधिक कठिनाइयों में फँसा देंगी।

ऐ प्राणी ! यदि तू इतना जानता कि स्वयं तू—अपने आप—कितनी शान्ति प्राप्त कर सकता है और अपना सच्चा कल्याण करके दूसरों को कितना सुख पहुँचा सकता है तो मैं सोचता हूँ कि तू आध्यात्मिक कल्याण और लाभ की ओर अधिक प्रयत्न-शील होता।

[१२]

ग़रीबी के लाभ

यह हमारे लिए लाभदायक है कि कभी-कभी हम पर कष्टों और आपदाओं का बोझ पड़े क्योंकि इनसे प्रायः आदमी को (होश में आने और) आत्म-चिन्तन का मौक़ा मिलता है। ऐसे समय हमें अपनी एकान्तिकता—अकेलेपन—का अनुभव होता है और ज्ञान होता है कि हमें किसी दुनियवी और नाशमान वस्तु में विश्वास करके भूल न जाना चाहिए।

हमारे ही कल्याण के लिए अच्छा है कि कभी-कभी हम पर आपदायें आयें और लोग हमें उस समय भी बुरा, खोटा एवं अपूर्ण समझें जब हम अच्छा काम कर रहे हों और हमारे मन में शुभ आकांक्षा हो।

ऐसी विपत्तियाँ प्रायः नम्र बनाने में हमारी मदद करतीं और झूठे अहंकार एवं दंभ से हमें बचाती हैं क्योंकि जब हम दुनियादार आदमियों-द्वारा उपेक्षित होते हैं, हमारी निन्दा होती है या हमारे काम का मूल्य कम आँका जाता है तो हम दुनिया से आस्था हटाकर अन्तर के साथी परमात्मा को लेकर चलते हैं।

इसलिए सबसे अच्छा तो यह है कि प्रत्येक आदमी ईश्वर में अपनी आस्था दृढ़ करे जिससे उसे किसी बाहरी सान्त्वना की आवश्यकता ही न रह जाय।

जब कोई सद्भावपूर्ण आदमी पीड़ित, प्रलोभन-लुब्ध या बुरे विचारों से उद्विग्न एवं विकल हो जाता है तब उस दुःख की अवस्था में वह ईश्वर को अपने लिए ज्यादा जरूरी समझता है और अनुभव करता है कि उसकी सहायता के बिना मैं कोई अच्छा काम न कर सकूँगा। उस समय वह रोता है, तड़पता एवं दुखित होता है और प्रार्थना एवं विनय करता है पर यह सब इसलिए कि वह उस दुःख की पीड़ा से छूटना चाहता है जिससे ग्रसित होता है। ऐसे समय तो जीना भी उसे भार-रूप मालूम पड़ता है; वह मौत की इच्छा करता है जिससे जीवन के बंधन से छूटकर भगवान् की सत्ता में मिल जाय।

ऐसे ही समय उसे यह ज्ञान भी होता है कि पूर्ण निश्चितता और शान्ति इस दुनिया (सांसारिक विषयों) में नहीं मिल सकती।

[१३]

प्रलोभनों पर विजय

जबतक हम इस दुनिया में हैं तबतक संभव है तूफानों और प्रलोभनों से रहित न हो सकें। जोव (Job) में लिखा भी है—"प्रलोभन पृथ्वी पर मनुष्य का जीवन है।" इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपने प्रलोभनों के सम्बन्ध में सदा सतर्क रहना चाहिए और सतत् भगवत्प्रार्थना में तल्लीन रहना चाहिए। इससे तेरी आत्मिक उन्नति का यह शत्रु तुझे धोका देने का मौक़ा न पा सकेगा क्योंकि वह कभी सोता नहीं वरन् सदा उस व्यक्ति की खोज में लगा रहता है, जिसे निगल जाना चाहता है।

कोई मनुष्य इतना पूर्ण या पवित्र नहीं है कि किसी न किसी समय उसके मन पर प्रलोभनों का अधिकार न हो जाता हो।

फिर भी मानना पड़ेगा कि प्रलोभनों में भले ही बोझ और कष्ट हो पर उनसे प्रायः मनुष्य का हित होता है क्योंकि उनके द्वारा आदमी विनम्र, शुद्ध और अनुभवी बनता है।

सभी सन्तों ने आपदाओं और प्रलोभनों से लाभ उठाया है। जिन्होंने प्रलोभनों का बोझ भली-भाँति नहीं उठाया वे धर्म

मार्ग से च्युत होकर नास्तिक हो गये और अपने लक्ष्य में असफल हुए।

न तो कोई सम्प्रदाय इतना पवित्र है, न कोई स्थान इतना सुरक्षित और गुप्त है कि वहाँ प्रलोभन और आपदायें न हों।

कोई भी आदमी, जबतक वह जीता है, प्रलोभनों से सर्वथा मुक्त होने का दावा नहीं कर सकता क्योंकि जिन सामग्रियों और साधनों से हम प्रलुब्ध होते हैं वे तो हमारे ही अन्दर मौजूद हैं और इसका कारण यही है कि हमारे जन्म के मूल में ही शारीरिक कामनायें होती हैं।

जब एक आपदा या प्रलोभन चला जाता है, दूसरा आता है और सदा हमारे पीछे कुछ-न-कुछ कष्ट लगा रहता है क्योंकि हम लोग आत्मानन्द का महत्त्व भूल गये हैं।

बहुत-से आदमी प्रलोभनों से भागकर उनपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं; वे और भी व्यथाजनक रूप में उनके जाल में फँसते हैं। केवल दूर भागने से हम उनपर विजय नहीं प्राप्त कर सकते किन्तु धीरज और विनम्र सहनशीलता-द्वारा हम अपने को सब शत्रुओं से अधिक शक्तिमान बना सकते हैं।

जो केवल बाहर से प्रलोभनों को छोड़ता है, जड़ से उन्हें उखाड़ नहीं फेंकता वह विशेष लाभ नहीं उठा सकता। उलटे बार-बार उसपर प्रलोभन आक्रमण करते हैं और वह दिन-दिन अपने को दुर्बल और खराब होता हुआ पाता है।

कट्टरता और चिड़चिड़ापन की अपेक्षा भगवान् की सहायता, सतत् कष्ट-सहन और धीरज के द्वारा थोड़ा-थोड़ा करके तू उनपर अधिक अच्छी तरह विजय प्राप्त कर सकता है।

किसी को प्रलोभनों से त्रस्त देख तो उसपर निर्दय मत बन; उसके साथ कड़ाई का व्यवहार मत कर वरन् उसको आराम और सान्त्वना दे।

सभी प्रलोभनों का आरम्भ हृदय की अस्थिरता और भगवान् में श्रद्धा के अभाव से होता है। जैसे कर्णधार के बिना जहाज़ लहरों के साथ इधर-उधर उछलता फिरता है, उसी प्रकार जो मनुष्य अपने आदर्श या लक्ष्य को भूल बैठता है या उसे दृढ़ता के साथ ग्रहण नहीं करता, अनेक प्रकार के प्रलोभनों में क्षुब्ध होता है।

आग सोने को खरा कर देती है; उसी प्रकार प्रलोभनों में धर्मात्मा की जाँच हो जाती है।

प्रायः यह देखने में आता है कि हमारे अन्दर जितनी कार्य-शक्ति छिपी होती है, (साधारण अवस्था में) उसके अनुसार हम काम नहीं करते परन्तु प्रलोभन के समय हमें अपने अस्तित्व और शक्ति का ज्ञान हो जाता है और हम अपनी सुप्त शक्तियों को जाग्रत पाते हैं।

जो हो, हमें आरम्भ में ही इस ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए क्योंकि उस समय शत्रु (प्रलोभन) आसानी से पराजित और निर्मूल किया जा सकता है। उसे मन के द्वार के भीतर प्रवेश न करने दे, ज्यों ही वह कुण्डी खटखटावे, दरवाज़े पर उसका सामना कर।

पहले मन में एक ज़रा-सा सरल विचार उठता है, फिर एक दृढ़ कल्पना आती है। उसके बाद सुख का उन्माद और फिसलन, फिर मन की स्वीकृति और समर्थन! (पतन का यह क्रम है)।

इसलिए यदि आरम्भ में ही नहीं पराजित कर दिया गया, तो यह चालबाज़ शत्रु धीरे-धीरे भीतर पैठता जाता है, यहाँ तक कि सर्वत्र पूरी तरह छा जाता है और उसका सामना करने में आदमी जितना ही विलम्ब करता है उतना ही वह कमजोर और यह शत्रु शक्तिमान होता जाता है।

कुछ आदमियों को धर्मावलम्बन के आरंभ में और कुछ को अन्त में तीव्र प्रलोभनों का अनुभव करना पड़ता है किन्तु बहुत-से ऐसे भी हैं जिन्हें वह जीवन-भर चैन नहीं लेने देता।

प्रलोभनों के झोकों के बीच हमें निराश न हो जाना चाहिए वरन् भगवान् से और भी अधिक श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए कि वह इस विपद् से उबारे क्योंकि ये विपदायें भी भगवान् हमारे कल्याण के लिए और हमें उज्ज्वलतर बनाने के लिए भेजता है।

इसलिए आओ, विपदाओं और प्रलोभनों में हम अपने हृदय को भगवान् के चरणों में झुकावें। जो हृदय से विनम्र, दीन और श्रद्धालु होंगे उनकी वह अवश्य रक्षा और विकास करेगा।

प्रलोभनों और दुःखों के बीच ही यह सिद्ध होता है कि एक मनुष्य में लाभ उठाने की कितनी शक्ति है। ऐसे ही समय योग्यता और गुणों का सर्वोत्तम प्रकाशन होता है।

किसी आदमी का धार्मिक और उत्साही होना कोई बड़ी बात नहीं है। हाँ, यदि वह विपद्-काल में धीरज और शान्ति के साथ दुःखों को सहन करता है तो उसके कल्याण की विशेष आशा की जा सकती है।

बहुत-से ऐसे आदमी हैं जो बड़े-बड़े प्रलोभनों से बच जाते हैं पर छोटे प्रलोभनों में नित्य पराजित होते रहते हैं। इतना दुर्बल होते हुए उन्हें बड़े-बड़े कार्यों एवं प्रलोभनों के बीच अपना ज्यादा विश्वास न कर लेना चाहिए क्योंकि जो छोटी बातों में प्रलुब्ध हो सकता है उसके लिए बड़ी बातों में भी कोई निश्चय नहीं है।

उत्तेजनापूर्ण निर्णय

अपनी आँखें अपनी ओर फेर; दूसरों के कर्मों का निर्णायक—'जज'—मत बन।

दूसरों के बारे में निर्णय देने या रायज़नी करने में मनुष्य व्यर्थ समय और शक्ति खोता है और अक्सर ग़लती करता एवं पाप का भागी होता है किन्तु अपने मन पर ध्यान देने और बार-बार उसकी परीक्षा करते रहने से उसका परिश्रम सफल और कल्याणकारी होता है।

चूँकि हमारे हृदय में पहले से एक विशेष प्रकार के भाव और विचार बने रहते हैं इसलिए दूसरों के बारे में राय देते समय हम अपने असली मत को अपनी पसन्दगी पर बलिदान कर देते हैं (और जैसा हम चाहते हैं वैसा न करने पर लोगों की निन्दा करते हैं)।

यदि हमारी इच्छाओं का लक्ष्य परमात्मा हो अर्थात् सबकुछ हम ईश्वर के लिए करते हों तो दूसरों के अपनी राय न मानने पर हम दुखित भी न हों किन्तु अक्सर कोई चीज़ जो भीतर छिपी होती है, या बाहर से आजाती है हमारे पथ से हमें इधर-उधर कर देती है।

बहुत-से आदमी जिन चीजों पर निर्णय या राय देते हैं उनमें अपना लाभ खोजते हैं किन्तु मज़ा यह है कि वे स्वयं इस बात को नहीं जानते ।

जब सब बातें उनके अपने क़ायदे एवं हिसाब से और उनकी इच्छाओं के अनुसार होती जाती हैं तो उन्हें मालूम होता है कि सब-कुछ ठीक हो रहा है किन्तु यदि उनकी इच्छा के अनुकूल न हो तो वे बहुत जल्द उत्तेजित और दुखित हो जाते हैं ।

मतभेद और चालाकी के कारण ही प्रायः मित्रों, पड़ोसियों और धर्मशील लोगों के बीच झगड़े खड़े हो जाते हैं ।

पुरानी प्रथा को तोड़ना कठिन होता है और जिस मनुष्य को जो मार्ग ठीक मालूम होता है उसके सिवा दूसरे मार्ग पर उसे ले जाना अत्यन्त कठिन होता है ।

यदि तू नम्र बनाने वाली भगवान् की श्रद्धा की अपेक्षा अपनी बुद्धि और तर्क पर अधिक निर्भर करता है तो तुझे विवेक-वान और आत्म-प्रकाश से परिपूर्ण मनुष्य बनने में देर लगेगी क्योंकि भगवान् चाहता है कि हम सब विषयों का त्याग करके उसकी शरण लें× और वह हमारे प्रेम को पवित्र और प्रकाशमान बनाकर सब प्रकार के तार्किक और बुद्धि-मान मनुष्य से ऊँचा उठा दे ।

× गीता में भगवान् कहते हैं—

सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥
— गीता

[१५]

उदार कर्म

मनुष्य के प्रेम अथवा इस दुनिया की किसी चीज़ के लिए बुराई नहीं करनी चाहिए। जिन्हें आवश्यकता है, उनके लाभ के लिए कोई अच्छा या दूसरा उत्तमतर काम देना चाहिए क्योंकि इस प्रकार सुकर्म का नाश नहीं होता, केवल उसका रूप बदल जाता है।

उदारता (हृदय की विशालता) के विना कोरे बाहरी दिखाऊ कामों से कोई लाभ नहीं; उदारतापूर्वक छोटा-बड़ा जो कुछ किया जाता है, फलदायी होता है। क्योंकि भगवान् इस बात पर ध्यान नहीं देते कि एक आदमी कितना बड़ा काम करता है बल्कि यह देखते हैं कि कितनी विशालहृदयता से काम करता है।

जो अधिक प्रेम करता है वही अधिक काम करता है और जो काम अच्छी तरह करता है, समझो कि वही अधिक काम करता है (प्रेम करना सब कामों से बढ़कर है और किसी काम को अच्छी तरह करना, मात्रा में अधिक काम करने से अच्छा है)।

जो अपने कल्याण की अपेक्षा सर्व-साधारण की सेवा का ख्याल अधिक रखता है वही अच्छा काम करने वाला है ।

कई बार अनुचित राग भी उदारता के रूप में दिखता है । अनुचित राग की प्रवृत्ति में अपनी इच्छा, पुरस्कार की आशा, लाभ के प्रति आग्रह इत्यादि प्रायः सहायता करने के लिए तैयार रहते हैं ।

जिसमें उदारता और हृदय की विशालता का पूर्ण विकास हो गया है वह अपने लिए किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखता वरन् सब पदार्थों में और सबके ऊपर, भगवद्विभूति को देखने की इच्छा रखता है । साथ ही वह किसी व्यक्ति से ईर्ष्या नहीं करता क्योंकि वह चाहता है कि सब चीजें सच्चिदानन्द से ओतप्रोत हों । वह किसी अच्छाई का करने वाला किसी व्यक्ति को नहीं मानता वरन् सब अच्छाइयों का कारण भगवान् को मानता है जिससे मूलतः वे विकसित होती हैं और जिसमें अन्त में मिलकर सब सन्त विश्राम ग्रहण करते हैं ।

आः ! जिन्हें इस सच्ची उदारता का ज्ञान हो गया है वे अनुभव करते हैं कि सब पार्थिव वस्तुयें असार हैं ।

[१६]

पर-छिद्रान्वेषण

ऐसे दोष, जिनको मनुष्य अपने या दूसरों के अन्दर से दूर न कर सकता हो, शान्ति एवं धैर्य के साथ तबतक सहन करने चाहिए जबतक भगवान् उनका संशोधन नहीं करते।

तू इसे मन में गाँठ बाँध ले कि यह तेरी परीक्षा और धैर्य के लिए प्रयोजनीय है क्योंकि इन कठिनाइयों के बिना तेरे सद्-गुणों का मूल्य ही क्या? हाँ, जब ऐसी विघ्न-बाधायें उपस्थित हों तो उन्हें दूर करने तथा उनके सहने की शक्ति प्रदान करने के लिए नम्रता और दीनता-पूर्वक तू भगवान् से प्रार्थना कर।

यदि कोई एक-दो बार चेतावनी देने और समझाने पर भी दोष-त्याग न करे, न अच्छी सलाह पर चलने में सचेष्ट हो तो उसके साथ विवाद न कर, सब-कुछ भगवान् के चरणों में सौंप दे कि उसकी इच्छा और उपासना पूर्ण हो। भगवान् प्राणी के अन्दर बुराई को भलाई में बदल दे सकते हैं।

दूसरों के दोष और कमजोरियों को, चाहे वे किसी प्रकार की हों, सहन करने और निभाने में धीर और सहनशील होने का

अभ्यास कर; कारण तुझमें भी बहुत-सी ऐसी कमजोरियाँ हैं जो दूसरों को सहनी पड़ती हैं। जब तू अपने को ही अपनी इच्छा के अनुकूल बना नहीं पाता है तो दूसरों से अपनी इच्छानुसार बन जाने की आशा कैसे रख सकता है? हम लोग प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक दूसरों को पूर्ण बनाने की इच्छा करते हैं किन्तु अपने दोषों को दूर नहीं करते। दूसरों के दोषों पर शासन करना चाहते हैं पर स्वयं शासित होने की बात हमारे मन में नहीं आती। हम दूसरों की दुर्बलता, छूट और अपरिमित स्वाधीन आचरण से असन्तुष्ट और दुःखी होते हैं किन्तु अपने लिए तो हम जो-कुछ चाहते हैं उसमें से किसी बात के लिए इनकार सुनना पसन्द नहीं करते। दूसरों को हम कठिन व्यवस्था के अधीन रखना चाहते हैं किन्तु अपने किसी व्यवस्था के अधीन होना नहीं चाहते।

इससे यह देखा जा सकता है कि हम अपने परिचितों और पड़ोसियों को तौलने में कितनी कट्टरता और अनुदारता से काम लेते हैं, जब अपने लिए उस कसौटी को सरल और लचीली कर देते हैं।

यदि सब लोग पूर्ण और निर्दोष ही हो जायँ तो, ईश्वर के नाम पर, दूसरों के लिए कष्ट सहने को हमारे पास क्या रह जायगा? इसीलिए यह विधाता का विधान है कि हम परस्पर एक-दूसरे का बोझ उठाना सीखें क्योंकि जगत् में कोई भी निर्दोष नहीं है, कोई बोझ से मुक्त नहीं है, कोई अपने आप के लिए पर्याप्त (पूर्ण) नहीं है, कोई भी अपने आपको सँभालने योग्य ज्ञानी नहीं है। इसलिए हम को

एक-दूसरे की अपूर्णता सहनी चाहिए, एक-दूसरे को सान्त्वना और सुख देना चाहिए, मिलकर एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए तथा सहयोगपूर्वक परस्पर समझना-समझाना और बुराई से हटाना चाहिए।

मनुष्य वास्तव में क्या है, उसमें कितने सद्‌गुण हैं, यह विपत्ति में ही ठीक-ठीक प्रकट होता है। कुअवसर और दुःख-विपद् मनुष्य को गिराते नहीं वरन् यह दिखाते हैं कि वह असल में क्या है—कितना दुर्बल है ?

[१७]

धार्मिक जीवन

यदि तू दूसरों के साथ सहयोग और शान्ति रखना चाहता है तो तुझे अनेक विषयों में आत्म-दमन का अभ्यास करना चाहिए।

निर्जन अथवा समाज में रहकर निर्दोष भाव से चलना और मृत्युपर्यन्त विश्वस्त बने रहना मामूली बात नहीं है। धन्य हैं वे व्यक्ति जिन्होंने पवित्रतापूर्वक रहकर अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर दी है।

यदि तू सत्य पर दृढ़ रहना और सच्चा लाभ उठाना चाहता है तो अपने को इस दुनिया में विदेशी और निर्वासित पथिक समझ। तेरे लिए भगवान् की भक्ति में निमग्न रहना अच्छा है।

धार्मिक जीवन-यापन के लिए वेश-भूषा का विशेष महत्त्व नहीं है। कुवासनाओं के परित्याग और इन्द्रिय-दमन के द्वारा ही प्रकृत धर्माचरण की साधना होती है।

जो अपनी आत्मा के कल्याण के लिए भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की कामना करता है, वह आपदायें और दुःख

ही उठाता है। जबतक कोई अपने को सब से क्षुद्र और सबका सेवक नहीं समझता तबतक उसकी शान्ति स्थायी नहीं हो सकती।

तू इस संसार में शासन नहीं, सेवा करने आया है। इसे याद रख कि यहाँ तू परिश्रम करने और कष्ट भोगने के लिए आया है; आलस्य में समय खोने और बातें बनाने के लिए नहीं।

इस संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं जो आग में तप कर सोना सिद्ध हुए हैं। अपना सर्वस्व भगवान् के चरणों में अर्पित करके जो नम्र और दीन नहीं बन गया है वह किसी प्रकार इस संसार (की आग) में खड़ा नहीं रह सकता।

[१८]

पवित्र साधुओं के दृष्टान्त

प्राचीन साधुओं के उज्ज्वल और जीवित दृष्टान्तों पर ध्यान दे जिनसे प्रकृत सिद्धि प्रकाशित हो रही है। तू देखेगा कि उनकी तुलना में हम जो-कुछ करते हैं वह नगण्य है। हाय, हमारा जीवन उनके सामने क्या है ?

सच्चे भगवद्भक्तों ने क्षुधा और तृष्णा में, शीत और वस्त्राभाव में, श्रम और क्लान्ति में, जागरण और उपवास में, प्रार्थना और ध्यान में तथा अनेक प्रकार की ताड़ना और निन्दा के बीच प्रभु की सेवा की है। उन्होंने अपने भौतिक शरीर की उपेक्षा करके अनन्त जीवन की रक्षा की चेष्टा की।

उन सच्चे साधुओं ने किस प्रकार जितेन्द्रिय होकर जीवन-यात्रा पूर्ण की ! न जाने कितनी कठिन और लम्बी परीक्षाओं में उन्हें तपना पड़ा। कितनी ही बार शत्रुओं ने उनपर आक्रमण किया और ऐसे समय कैसी श्रद्धा, दीनता और व्यग्रचित्तता से उन्होंने भगवान् को पुकारा। हम लोगों की—जनसमाज की—आत्मिक उन्नति के लिए उन्होंने कितने कष्ट सहे, कितने उद्योग किये। कुवासनाओं के साथ उन्होंने किस

प्रकार प्राणपण से संग्राम किया। भगवान् के उद्देश्यों की कैसे विशुद्ध और सरल भाव से उन्होंने रक्षा की।

दिन भर वे कठिन श्रम करते और रात को प्रार्थना में लीन रहते। दिन में परिश्रम करते समय भी वे मन ही मन प्रार्थना करना भूलते नहीं थे। वे अपना समय, अपने समय का प्रत्येक घण्टा उत्तम रूप से बिताते थे। भगवत्-ध्यान में अधिक समय भी उन्हें बहुत कम मालूम पड़ता था। उपासना और ध्यान में वे इतनी तन्मयता और मधुरता अनुभव करते कि कई बार शारीरिक क्षुधा-तृष्णा एक दम भूल जाते थे।

उन्होंने धन-वैभव, उच्चपद, मान और बन्धुओं का अकातर भाव से त्याग किया था और जगत् के किसी विषय में वे आसक्त नहीं थे। शरीर-रक्षा के लिए जितना आवश्यक है उतना भी वे कठिनाई से ग्रहण करते थे और इतने में भी उन्हें दुःख होता रहता था कि यह सब अनिवार्य होने के कारण शरीर के लिए करना पड़ रहा है। पार्थिव विषयों में दरिद्र होते हुए भी शील और सदाचरण में वे धनी थे। बाह्य दृष्टि से उनमें अभाव और आवश्यकता थी किन्तु भीतर से वे स्वर्गीय शान्ति एवं तृप्ति से परिपूर्ण थे।

संसार के लिए वे अपरिचित, विदेशी-से थे किन्तु ईश्वर के निकट वे अन्तरंग और सुपरिचित बन्धु की तरह थे। स्वयं अपनी दृष्टि में वे नगण्य एवं इस जगत की दृष्टि में तुच्छ और उपेक्षणीय थे किन्तु ईश्वर की दृष्टि में वे आदरणीय और प्रिय थे।

उनमें सच्ची नम्रता थी; वे भगवान् के सरल आज्ञापालन

दत्तचित्त रहते थे और सदा उदारता, शान्ति और धीरज के साथ जीवन बिताते थे इसीलिए प्रतिदिन उनकी आत्मिक पवित्रता बढ़ती थी और भगवत्कृपा से उनका सदा कल्याण होता था।

वे धार्मिक जीवन बितानेवालों के लिए आदर्श थे। उनके दृष्टान्तों से हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जिससे हम शिथिल और उद्योगशून्य लोगों का अनुसरण करना छोड़ सकें और इन साधुओं की भाँति आत्मिक श्रीवृद्धि और आत्मान्वेषण की चेष्टा में प्रवृत्त हों।

[१९]

एक साधु धार्मिक पुरुष की नित्य-साधना

एक उच्च धार्मिक पुरुष का जीवन सब प्रकार के सद्गुणों से प्रकाशित होना चाहिए जिससे वह भीतर से भी वैसा ही हो जैसा बाहर से दिखाई पड़ता है। इतना ही नहीं बाहर हमारे जितने सद्गुण प्रकाशित हों भीतर उनका उससे अधिक होना आवश्यक है। भगवान् की दृष्टि सदा ही हमारे ऊपर रहती है अतः सब जगह उसका सबसे अधिक मान और भय करके अपने आचरण का देव-तुल्य उज्ज्वल और पवित्र रखना हमारा कर्तव्य है।

जब पहली बार भगवद्भक्ति की भावना मन में जगी थी तब के उत्साह की तरह नित्य मन में अपने लक्ष्य की प्राप्ति का दृढ़ संकल्प करके भगवान् से प्रार्थना कर—"हे प्रभु, हमारे शुभ उद्देश्य में सहायता कर और अपनी सेवा में मुझे नियोजित कर। आज का दिन पूर्णतः सदाचरण में ही व्यतीत हो क्योंकि अभी तक हमने इस ओर कुछ नहीं किया है—अथवा जो कुछ किया है वह नगण्य है।"

हमारे संकल्प की मात्रा के ऊपर ही हमारी आत्मिक उन्नति

निर्भर है। जिसे अधिक उन्नति की इच्छा हो उसे इस विषय में अधिक प्रयत्न करना भी आवश्यक है। जब दृढ़ संकल्प करके भी हम अपने मार्ग से हट जाते हैं तब जो अपने संकल्प में दुर्बल हैं या जो संकल्प ही नहीं करते उनकी क्या अवस्था होगी ?

ऐसा देखा जाता है कि अनेक कारणों से मनुष्य अपने संकल्प को छोड़ देता है किन्तु दैनिक साधनों में थोड़ी त्रुटि होने से आत्मा की भी कुछ-न-कुछ क्षति होती है।

धार्मिक और सात्विक पुरुषों का संकल्प अपने ज्ञान पर उतना निर्भर नहीं करता जितना भगवान् की श्रद्धा पर निर्भर करता है। वह तो प्रत्येक विषय में भगवान् पर ही भरोसा रखता है।

मनुष्य संकल्प अवश्य करता है किन्तु उसकी सिद्धि तो भगवान् के ही हाथ है। मनुष्य की गति स्वयं मनुष्य-द्वारा निर्द्धारित नहीं होती।

किसी सत्कर्म अथवा किसी बन्धु के विशेष उपकार के लिए यदि कभी नित्य साधना का भंग हो जाय तो शीघ्र ही उसकी पूर्ति हो जाती है परन्तु आलस्य या अमनोयोग के कारण साधना का अभ्यास छोड़ देने पर वह एक गंभीर दोष बन जाता है और उससे हमारे समाज की विशेष क्षति होती है। यथासाध्य सत्कर्म करते रहने पर भी अनेक विषयों में हम लोगों को अपनी त्रुटि—कमजोरी—का अनुभव होता है।

किसी निश्चित विषय में संकल्प करके चलना हमारे लिए सर्वदा ही

उचित है किन्तु जिन-जिन दोषों में हम सहज ही पतित हो जाते हैं—नीचे गिर पड़ते हैं उन्हें निर्मूल करने की हमें दृढ़ चेष्टा करनी चाहिए।

भीतर-बाहर दोनों की भलिभाँति परीक्षा करके हमें आत्म-शासन करना चाहिए क्योंकि धार्मिक उन्नति के लिए दोनों ही आवश्यक हैं।

यदि तू सर्वदा आत्म-परीक्षा नहीं कर पाता है तो प्रतिदिन एक-बार, प्रातः या सायंकाल में, तो अवश्य ही आत्म-दर्शन में प्रवृत्त हो।

प्रातःकाल सत्संकल्प कर और संध्या समय अपनी परीक्षा करके देख कि दिन भर मन, वचन और कर्म का तूने कैसा उपयोग किया है। तुझे मालूम पड़ेगा कि तूने मनुष्य और ईश्वर दोनों के प्रति अनेक अपराध किये हैं।

शैतान के विकट आक्रमण से अपनी आत्मा की रक्षा करने के लिए वीर की भाँति कमर कसकर खड़ा हो।

स्वाद का त्याग कर; इससे रक्त-मांस (शरीर) की कुप्रवृत्तियों का सहज ही तू शासन कर सकेगा।

कभी बेकार मत बैठ। अध्ययन, लेखन, प्रार्थना, ध्यान या किसी मंगल-कर्म में सदा ही लगा रह।

नित्य के शारीरिक व्यायामादि विवेकपूर्वक कर। क्योंकि सबके लिए एक ही विधि लाभदायक नहीं हो सकती, एक के लिए जो उपयुक्त है वही दूसरे के लिए अनुपयुक्त है।

जीवन की नित्य साधना में जो विषय गुप्त हैं अथवा जो सबके लिए उचित नहीं है, उन्हें प्रकाश्यरूप से न कर क्योंकि गुप्त

साधना निर्जन में ही निर्विघ्न भाव से पूर्ण की जा सकती है।

व्यक्तिगत साधना में इतना निमग्न न हो कि सामान्य सामाजिक कर्तव्य की उपेक्षा होने लगे। भलीभाँति साधारण कर्त्तव्य निबाहने के बाद यदि समय बचे तो रुचि के अनुकूल व्यक्तिगत साधना में उसका उपयोग करे।

एक ही प्रकार की साधना सब के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए साधना की भिन्न-भिन्न विधियाँ आवश्यक हैं।

दैनिक साधना अवस्था--सापेक्ष है; परीक्षा के समय एक प्रकार की, शान्ति के समय दूसरे प्रकार की, प्रलोभन एवं मानसिक दुःख के समय कुछ और तथा अत्यधिक आनन्द के समय कुछ और तरह की साधना की आवश्यकता होती है।

विशेष त्योहारों के समय पवित्र साधनाओं का दृढ़तापूर्वक अभ्यास करना और पवित्र संतों के दृष्टान्तों से उपदेश ग्रहण करना चाहिए।

साधु ल्यूक कहते हैं—"वह जागरूक सेवक धन्य है जिसे आकर प्रभु अपने कर्तव्य-कर्म में लगा हुआ पावेंगे। ऐसे विश्वस्त सेवक को वह अपनी सम्पूर्ण विभूतियाँ सौंप देंगे।"

[२०]

मौनावलम्बन और एकान्त-प्रेम

आत्म-परीक्षा का सुयोग खोज और भगवान् की करुणा का वारम्वार स्मरण कर।

कुतूहलोत्पादक वस्तुओं का परित्याग कर; तेरे पठन-पाठन का उद्देश्य समय काटना न हो; उससे तेरे हृदय में अपनी गिरी दशा पर अनुताप जन्मे।

यदि तू व्यर्थ विवाद, निरर्थक भ्रमण और नई-नई बातों एवं जनरव में रस लेने से अपने को निवृत्त करले तो तुझे मधुर ध्यान के लिए पर्याप्त और उचित सुयोग मिलेगा।

उच्चकोटि के साधकगण यथासंभव मानवी संसर्ग का त्याग कर निर्जन में भगवान् के साथ आलाप करते और उसमें तल्ली-नता प्राप्त करते हैं।

एक साधक ने कहा है—"जितनी वार मैं मनुष्यों में शामिल हुआ उतनी वार पहले से हीन मनुष्य के रूप में (अर्थात् कम पवित्र होकर) लौटा।" लम्बे वाद-विवाद में इसका अनुभव सहज ही हो जाता है।

बातचीत आरम्भ होने पर शब्दों के अपव्यय को रोकने की

अपेक्षा मनुष्य के लिए एकदम मौन रहना सदा ही अधिक सरल है। बाहर प्रलोभनों से अपनी रक्षा करने की अपेक्षा घर में एकान्त-सेवन करना अधिक सरल है।

इसलिए जो आत्मिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के अभिलाषी हैं उनका जन-समाज से दूर रहना आवश्यक है।

जिन्हें निर्जन में सन्तुष्ट रहने का अभ्यास नहीं है, जन-समाज में उनका जाना निरापद नहीं है।

जिसे मौनावलम्बन में आनन्द का अनुभव होता है, सतर्कभाव से बातचीत भी वही कर सकता है।

जो व्यक्ति अधीन रहना नहीं जानता, वह भलीभांति शासन भी नहीं कर सकता।

जिसने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञापालन करना नहीं सीखा वह योग्यतापूर्वक दूसरों पर शासन भी नहीं कर सकता।

जिसका अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र नहीं है वह किसी प्रकार विमल आनन्द का अधिकारी नहीं हो सकता।

साधुपुरुष (यद्यपि निर्भीक होते हैं फिर भी वे) भगवान् से भय रखते हैं। यही उनकी रक्षा का कवच है। वे अनेक सद्-गुणों से विभूषित होकर भी हृदय से नम्र एवं चिन्तनशील होते हैं।

किन्तु दुष्टों की निर्भीकता अहंकार और दुःसाहस से उत्पन्न होती है और अन्त में प्रवञ्चना में परिणत हो जाती है।

धार्मिक जीवन में बहुत ऊँचा उठकर और एक उच्च निर्जन साधक होकर भी इस जगत् में तू अपने जीवन को निरापद न समझ। जन-समाज में जिनका विशेष आदर होता है

उनका प्रायः अत्यधिक आत्म-निर्भरता के कारण भयानक पतन भी होता है।

साधक अतिसाहसी, अहंकारी या सुखाभिलाषी न हो जायँ इसलिए उनका परीक्षा और विपत्ति में पड़ना प्रायः हितकारी होता है। इससे मन में यह बात भी आती है कि प्रलोभनों से सर्वथा मुक्त हो जाने की अपेक्षा प्रलोभनों से आक्रान्त होते रहना और उनपर विजय प्राप्त करते रहना अधिक लाभकारी है।

अहा, जो नाशमान और अस्थायी सुखों के पीछे नहीं पड़ते और संसार के मोहजाल में नहीं बँधते, उनका अन्तःकरण कैसा निर्मल होता है!

जो असार भावनाओं से निवृत्त होकर केवल ईश्वरीय और आत्मोपयोगी विषयों में निरत रहते हैं और भगवान् पर पूरी तरह भरोसा रखते हैं वे इस जगत् में शान्त और निरुद्वेग जीवन व्यतीत करते हैं।

जिसे सच्चा अनुताप नहीं होता, वह स्वर्गीय सान्त्वना के योग्य नहीं है। यदि तू अपने पतन पर हृदय से दुःख का अनुभव करना चाहता है तो अपने एकान्त अन्तरागार में प्रवेश कर और जगत् के सब प्रकार के शोर-गुल से पृथक् हो जा। बाहर जो-कुछ तू प्रायः खो देता है भीतर वही तुझे मिलेगा।

तू जितना ही अपने अन्तरागार में प्रवेश करेगा, उतना ही अधिक उसे प्यार करना सीखेगा; वहाँ जितना ही कम प्रवेश करेगा उतना ही वह तेरे लिए विरक्तिजनक होता जायगा। भक्ति-साधना के आरम्भ में ही यदि तू सन्तोषपूर्वक अपनी

कुटी या अन्तरागार में स्थिर बैठने का अभ्यास करेगा तो वही तेरे लिए परमबन्धु के समान हो उठेगा।

ईश्वर-परायण व्यक्ति मौनावलम्बन-द्वारा धार्मिक साधना में अग्रसर होते और धर्मशास्त्र के निगूढ़ तत्त्वों का अनुशीलन करते हैं। वे अपनी एकान्त कुटिया के अन्दर प्रति रात्रि को अनुताप के आँसुओं से अपने हृदय के मल और कलुष को धोते हैं और इस प्रकार वे ज्यों-ज्यों जगत् के कोलाहल से दूर हटते हैं त्यों-त्यों अपने स्रष्टा के अधिकाधिक समीप पहुँचते हैं।

इस प्रकार जो अपने मित्रों एवं परिचितों से अलग होकर भगवान् का ध्यान करते हैं, भगवान् अपने पवित्र दूतों के साथ उनके निकट वास करते हैं।

आत्मा की उन्नति पर ध्यान न देकर संसार में आश्चर्यजनक कर्म करने की अपेक्षा आत्मोन्नति का यत्न करते हुए चुपचाप अलग पड़े रहना कहीं अच्छा है।

निर्जन साधक के लिए जन-समागम त्याज्य है। वह लोगों की दृष्टि के जितना ही बाहर रहेगा और आदमियों को देखने की लालसा से दूर हटेगा उतना ही उसके लिए कल्याणकारी होगा। जिसको प्राप्त करना तेरे लिए उचित नहीं है उसे तू क्यों देखना चाहता है?

कभी-कभी इन्द्रिय-रंजन के लिए हम बाहर भ्रमण करने को निकलते हैं और प्रायः उद्विग्न-से मन पर बोझ लिये हुए घर लौट आते हैं।

सानन्द बाहर जाने पर भी कभी-कभी दुःख के साथ घर लौटना।

पड़ता है। सन्ध्याकाल के आमोद के बाद कई वार प्रातः-काल दुःख का संदेश लिये हुए आता है। शारीरिक सुख का यही हाल है; वह मृदु हँसी हँसते-हँसते आता है किन्तु अन्त में अपने तीव्र दंशन से डँसता और मार डालता है।

यहाँ जो-कुछ देखने को नहीं मिलता, ऐसी कौन वस्तु दूसरी जगह देखने को मिलेगी ? देख, जिससे सब वस्तुओं की सृष्टि हुई है, वह आकाश और पृथिवी एवं समस्त मूल तत्त्व तो यहाँ भी उपस्थित हैं।

सूर्य के नीचे और कौन-सी स्थायी वस्तु दूसरी जगह दिखाई देगी ? मन की परीक्षा करके देख; तू दर्शन से तृप्त होना चाहता है किन्तु भली-भाँति गाँठ बाँध ले कि वह तृप्ति तुझे कभी न मिलेगी।

यदि तू ने संसार की सब वस्तुओं को देख लिया तो भी वह दर्शन असार के सिवा और क्या है ? सब से ऊँचे बैठे हुए भगवान् की ओर आँख उठाकर देख और प्रार्थना कर कि वह तेरे पापों और त्रुटियों को क्षमा करें। असार वस्तुओं को लेकर असार लोगों को व्यस्त रहने दे; तुझे भगवान् ने जो आज्ञा दी है उसी पर ध्यान दे।

द्वार रुद्ध कर और प्रियतम को पुकार। उसी के साथ निर्जन में वास कर; अन्य किसी स्थान में तुझे वैसी शान्ति नहीं मिलेगी।

यदि जन-समाज में मिल कर तू व्यर्थ समय न खोता तो निश्चय ही तेरे मन को अधिक शान्ति मिलती किन्तु कभी-कभी बाहरी दुनिया की नई-नई बातों को सुनने की तुझे जो उत्कण्ठा होती है उसी से तुझे यह मनस्ताप भोगना पड़ता है।

हार्दिक अनुताप

यदि तू नैतिक जीवन में उन्नति करना चाहता है तो ईश्वर-भीति के साथ संसार में चल और अधिक स्वाधीनता की आंकाचा न कर ! सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में रख और निरर्थक आमोद में अपने को वहा न दे।

सच्चे हृदय से अपने दुर्गुणों के लिए अनुताप कर; इससे भक्ति की वृद्धि होगी। अनुताप से अनेक कल्याण होते हैं पर मन की चंचलता शीघ्र ही उन्हें नष्ट कर देती है।

मनुष्य यदि इस संसार के बंधनों एवं आत्मा के संकटों का भलीप्रकार विचार करे तो इस जीवन में इस प्रकार के तुच्छ आमोद पर उसे स्वयं आश्चर्य होगा। मन की लघुता और अपने दोषों के प्रति उदासीनता रखने के कारण हम अन्तः-करण को पहुँचने वाली हानि एवं शोक का अनुभव नहीं कर पाते इसलिए जब हमें रोना चाहिए तब हम व्यर्थ हर्ष मनाते हैं।

निर्मल अन्तःकरण से ईश्वर को भय करना ही प्रकृत स्वाधीनता और यथार्थ सुख है। जो मनुष्य उद्वेगजनक और अन्य-मनस्कता-सूचक समस्त बाधाओं को दूर करके अनुताप-पूर्ण अन्तःकरण के साथ भगवान् के ध्यान में रम गया है वह धन्य है ! धन्य है वह जिसने उन सब वस्तुओं का त्याग कर दिया है जो उसके अन्तःकरण को धुँधला बनाती और दुःख देती हैं।

मर्द की तरह पाप से युद्ध कर; एक अभ्यास-द्वारा ही दूसरा कदभ्यास पराजित होता है ।

यदि तू जन-संसर्ग का त्याग करेगा तो अन्य लोग भी तेरे कार्य में बाधा देने नहीं आवेंगे ।

तू दूसरों की बातों में हाथ मत डाल और महापुरुषों के कार्यों में अपने को लिप्त न कर । तू सब से पहले अपनी ओर देख और जिनको तू सबसे अधिक स्नेह करता है उनके सम्मुख अपने दोषों को स्वीकार कर एवं पश्चात्ताप कर ।

मनुष्यों का अनुग्रह प्राप्त न होने के कारण तू दुखी न हो । तुझे दुखी तो यह सोचकर होना चाहिए कि तू अपने को उतना पवित्र और निर्मल नहीं रख पाता है जितना एक भगवद्भक्त साधु पुरुष को होना चाहिए ।

इस जीवन में बहुत अधिक सुख—विशेषत: इन्द्रिय-सुख का न पाना कई बार मनुष्य के लिए अधिक रक्षाजनक और कल्याणकर होता है ।

हम लोगों को जो स्वर्गीय शान्ति नहीं मिलती या मिलती है तो बहुत थोड़ी मात्रा में, यह हमारा ही दोष है; हम लोग सच्चे अनुताप—दग्ध हृदय से उसे नहीं खोजते और असार एवं बाह्य मोह-माया का त्याग नहीं करते ।

तू मन में यही सोच कि "मैं स्वर्गीय सान्त्वना का अधिकारी नहीं हूँ वरन् संताप का पात्र हूँ ।"

मनुष्य जब अधिक दुःख और अनुताप में होता है तो सारा संसार उसे कडुआ और क्लेशकर प्रतीत होता है ।

सत्पुरुष सदा ही अपने जीवन में अनुताप करने और रोने के

यथेष्ट कारण देखते हैं। जब वह अपनी या अन्य मनुष्यों की अवस्था पर विचार करता है तो उसे यह जानने में देर नहीं लगती कि संसार में किसी का जीवन दुःख-रहित नहीं है और ज्यों-ज्यों वह अपनी नैतिक अपूर्णता का ध्यान करता है त्यों-त्यों उसका हृदय अधिकाधिक अनुताप से व्यथित होता है।

जिन समस्त पापों में मग्न रहकर हम आत्मिक विषयों का चिंतन नहीं करते उन सब पापों के लिए अनुताप और विलाप करना हमारा कर्तव्य है।

तू यदि अपनी आयु बढ़ाने के बदले अपनी मृत्यु के बारे में अधिक चिन्ता करता तो इससे आत्म-शोध के लिए अधिक प्रयत्न-शील होता और यदि तू नरक के कष्टों एवं व्यथाओं पर ध्यान देता तो इस जीवन के कष्ट, दुःख और श्रम को प्रसन्नता-पूर्वक अंगीकार करने में तू पीछे न हटता किन्तु इन सब बातों पर ध्यान न देने से और जिन वस्तुओं से आमोद-प्रमोद किया जा सकता है केवल उन्हीं में अनुरक्त रहने से हम धार्मिक और नैतिक विषयों में अत्यन्त शिथिल और निस्तेज हो जाते हैं।

आध्यात्मिक भावों के अभाव के कारण ही हमारा यह अभागा शरीर बात-बात पर असंतुष्ट हो उठता है इसलिए भगवान् के निकट नम्रतापूर्वक प्रार्थना कर कि वह तुझमें सच्चा अनुताप उत्पन्न करें और पैग़म्बर की तरह भगवान् से कह कि "प्रभो ! मुझे आँसुओं का भोजन दे और अधिक मात्रा में अश्रु-जल देकर मेरी प्यास बुझा।"

[२२]

मनुष्य के दुःख पर विचार

चाहे तू किसी स्थान पर रहे या किसी भी दिशा में भ्रमण करे, तू हतभाग्य है यदि तूने भगवान् की ओर ध्यान नहीं लगाया।

सब वस्तुओं के विषय में जैसा तू चाहता है वैसा न होने पर तू कातर क्यों होता है? जगत् में ऐसा कौन है जिसे सम्पूर्ण इच्छित वस्तुएँ मिल गई हों? हम हों या तुम या कोई दूसरा हो कोई भी अपनी आकांक्षा की सारी चीजें नहीं पा सकता। चाहे राजा हो या धर्माचार्य इस संसार में दुःख-रहित कोई नहीं है।

तब सब से भाग्यवान् कौन है? जो ईश्वर के लिए दुःख भोग सकता है, वही।

हे प्रभु, दुनिया में ऐसे दुर्बल लोग कितने ही हैं जो कहते हैं—"देख, वह आदमी कितना सुखी है, उसके पास कितना धन है, वह कितना बड़ा आदमी है, उसकी कितनी प्रतिष्ठा है!" किन्तु स्वर्गीय वैभव (नैतिक धन) की ओर दृष्टि उठाकर देख तो तुझे दिखाई देगा कि यह सब संसारिक धन-मान असार और अस्थायी है तथा सुख की अपेक्षा उससे दुःख ही अधिक मिलता है। उनपर अधिकार होने पर प्रायः भय और स्वार्थ से मन अस्थिर और अशान्त रहता है।

ऐहिक सम्पत्ति की अधिकता से मनुष्य सुखी नहीं होता, उसके, लिए साधारण अवस्था ही श्रेष्ठ है। निश्चय ही पार्थिव जीवन

नितान्त दुःख-जनक है। मनुष्य में आत्मिक उन्नति की जितनी ही तीव्र अभिलाषा होती है, यह मर्त्य जीवन उसको उतना ही कड़ुआ और निस्सार प्रतीत होता है क्योंकि उस समय वह मानव-स्वभाव के दोषों और अपूर्णताओं को उतना ही स्पष्ट अनुभव करता है।

भोजन, पान, शयन, जागरण, श्रम एवं विश्राम इत्यादि प्राकृतिक कर्म धार्मिक लोगों को क्लेश-जनक प्रतीत होते हैं क्योंकि वे अपनी मुक्ति की आकांक्षा करते हैं और समग्र पापों से अपना उद्धार चाहते हैं।

हम जबतक इस संसार में रहते हैं तबतक हमारा अन्तःपुरुष हमारी शारीरिक अभिलाषाओं के बोझ से दबा रहता है।

इसी कारण उससे मुक्त होने के लिए पैगम्बर विनयपूर्वक प्रार्थना करते हैं—"हे प्रभु, संसार की सम्पूर्ण आवश्यकताओं से हमें मुक्त कर।"

किन्तु जो अपनी दुरावस्था नहीं जानते वे बड़े सन्ताप के पात्र हैं और जो इस दुःख-संकुल एवं नश्वर जीवन को प्रेम करते हैं उनके सन्ताप का ठिकाना नहीं होता। कोई कोई तो इस नश्वर जीवन को इतनी दृढ़ता से पकड़ते हैं कि परिश्रम क्या भिक्षा-द्वारा बड़े कष्ट के साथ अन्न-वस्त्र जुटाने पर भी वे सदा इसी जगत् में रहने की इच्छा करते हैं और स्वर्ग-राज्य के विषय में कुछ चिन्ता नहीं करते।

हाय, जो पार्थिव विषयों में आसक्त हैं और सच्चे धर्म-पथ को छोड़ केवल भौतिक सुखों में अनुरक्त हैं वे कैसे अबोध और अविश्वासी हैं! किन्तु ये अभागे अन्त में अनुभव करेंगे कि

जिन वस्तुओं के मोह में लिप्त रहे हैं वे कैसी असार हैं। उस समय के उनके दुःख-भोग का अनुमान कौन करेगा ?

परन्तु ईश्वरभक्त साधु गण शारीरिक सुखजनक ऐहिक और अस्थायी विषयों के मोह में नहीं पड़ते वरन् केवल नित्य-स्थायी वस्तुओं पर भरोसा रखते और एकाग्रचित्त से उनकी खोज करते हैं।

वे जानते हैं कि दृश्य वस्तुओं के मोह में पड़कर अधम विषयों में पतित होने का भय रहता है, इसलिए वे अदृश्य और अक्षय विषयों से ही लौ लगाते हैं।

हे भाई, 'आध्यात्मिक वस्तुओं-द्वारा कल्याण होता है' इस विश्वास को न खो। अब भी समय और सुयोग है; अपना संकल्प कल पर क्यों छोड़ता है ? कमर बाँधकर उठ खड़ा हो और कह—"बस यही काम करने का समय है, यही निर्मल होने का समय है,यही आत्म-संशोधन के लिए उपयुक्त समय है।"

जब विपदा के बादल छा रहे हों तो कह—"यही परीक्षा का समय है।" प्रकृत सुख पाने के पहले तुझे आग और पानी के बीच से चलना ही पड़ेगा।

जबतक तू यत्नपूर्वक आत्म-दमन न करेगा तबतक कभी पाप को पराजित नहीं कर सकेगा।

जबतक हमारा यह नश्वर और दुर्बल शरीर है तबतक हम पाप या दुःख से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकते।

हम सब दुःखों से मुक्त होकर शान्ति पाने की इच्छा तो करते हैं किन्तु पापों में लिप्त होकर हम अपने निर्दोष भावों को खो देते हैं अतः उन्हीं के साथ सच्चा सुख भी नष्ट हो जाता है,

अतएव जबतक इस पाप-वृत्ति का नाश नहीं होता और जीवन इस नश्वरता को निगल नहीं जाता तबतक धीरज रखना और भगवान् की कृपा पर भरोसा करना ही हमारे लिए उचित है।

हाय, मनुष्य कितना दुर्बल है? वह सदा पाप की ओर प्रयाण करने को तैयार रहता है! आज तू अपने जिस पाप पर पश्चात्ताप करता है कल फिर वही करने को तैयार हो जाता है। अभी तू आत्म-शोधन का संकल्प करता है किन्तु दो ही घण्टे के अन्दर ऐसे कर्म करने लगता है जिन्हें देखकर अनुमान भी नहीं किया जा सकता कि कभी ऐसा संकल्प किया होगा। जब हम इतने दुर्बल और अस्थिर हैं तब अपने अन्दर किसी महानता का अनुभव न करके नम्र और निरहंकार होना ही हमारे लिए उचित है।

जिसे ईश्वर की कृपा से हम बड़े कष्ट से पाते हैं उसे भी लापरवाही से खो बैठते हैं।

जब हम आरंभ में ही इतने मन्द हैं तो अन्त में हमारी क्या गति होगी?

हमें धिक् है! आचार-विचार में सच्ची पवित्रता का नामोनिशान न होने पर भी हम अपने को सुखी और निरापद समझकर अपने को भुलाये रखते हैं!

नवीन शिष्यों की तरह, पवित्र जीवन बिताने की विधि के बारे में बिलकुल शुरू से शिक्षा लेना हमारे लिए आवश्यक हो उठा है; संभव है इससे हमारे आचार-विचार में संशोधन हो और आध्यात्मिक विषयों में हम उन्नति कर सकें।

[२३]

मृत्यु-चिन्ता

आज मनुष्य है, कल नहीं है। शीघ्र ही तेरी भी यही अवस्था होगी। सोचकर देख क्या तू इसे अन्यथा कर सकता है ?

आँख से दूर होने पर कुछ दिनों बाद मनुष्य स्मृति-पट से भी लुप्त हो जाता है।

हाय, मनुष्य का मन कैसा अबोध और कठिन है ! वह भविष्य के विषय में कुछ नहीं सोचता, केवल वर्तमान को ही लेकर मस्त रहता है ! शीघ्र ही मृत्यु होनेवाली है, इसका ध्यान करके हमें प्रत्येक क्षण सदाचरण में लगाना चाहिए ।

यदि तेरा अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र होता तो तुझे मृत्यु इतना भयभीत न कर सकती।

मृत्यु से भागने की अपेक्षा पाप से भागना कहीं अच्छा है। तू यदि आजतक तैयार नहीं हुआ तो कल कैसे तैयार हो सकेगा ? और कल तक तू जीवित ही रहेगा, इसका निश्चय क्या है ? ×

× काल करे सो आज कर, आज करे सो अब
पल में परलै होयगी, बहुरि करेगा कब ॥

—कबीर।

आत्म-संशोधन नहीं हुआ तो अधिक दिन तक जीने का फल ही क्या ? दीर्घ आयु से अपने जीवन और चरित्र की उन्नति न करके प्रायः मनुष्य पाप की वृद्धि करता है। हाय, यदि इस जगत् में हमारा एक दिन भी उत्तम रूप से बीतता !

बहुत-से लोग भक्ति-मार्ग ग्रहण करने के दिनों की गणना करते हैं किन्तु बहुत दिन बीतने पर भी उनका नैतिक उत्थान बहुत ही थोड़ा हो पाता है। प्राण-त्याग करना यदि भयावह मालूम पड़ता है तो बहुत दिनों तक प्राण-धारण करना और भी विपज्जनक है। धन्य है वह जो सदा मृत्यु को सामने मानकर सदाचरण में लिप्त है और सदा मृत्यु के लिए तैयार रहता है।

यदि तूने कभी किसी को मरते देखा है तो सोच ले कि तुझे भी उसी तरह मरना होगा।

प्रातःकाल स्मरण कर कि संध्या के पहले ही मेरी मृत्यु हो सकती है और संध्या-काल आने पर सोच कि पता नहीं प्रातःकाल देखने पाऊँगा या नहीं।

सर्वदा तैयार रह; जिससे मृत्यु तुझे असावधान अवस्था में न पकड़ ले; इस प्रकार अपना समय सत्कर्म में लगा। कितने ही लोगों की मृत्यु अकस्मात् हो जाती है; उन्हें कुछ सोचने का अवसर ही नहीं मिलता।

अन्तिम समय उपस्थित होने पर तेरे आमोद-प्रमोद का सब भाव बदल जायगा और तुझे इस बात पर अत्यधिक दुःख का अनुभव होगा कि मैंने अपने जीवन को इस बुरी तरह बिताया।

जो अपने को मृत्यु और जीवन में सम-भाव से देखने की इच्छा

करते हैं और सारा जीवन सत्कर्मों में लगाते हैं वे धन्य हैं!

यदि तू सुख और शान्ति से मरना चाहता है तो संसार के प्रति पूर्ण उदासीनता, सत्कर्म में अनुरक्ति, नियम-पालन, हार्दिक अनुताप, आज्ञापालन, आत्म-दमन तथा भगवान् की इच्छा समझकर सब प्रकार के कष्ट-सहन के भाव धारण कर।

जबतक तू सुस्थ है तबतक परोपकार के अनेक कार्य कर सकता है किन्तु पीड़ित होने पर क्या कर सकेगा? पीड़ा-द्वारा बहुत ही थोड़े लोग पहले से अच्छे हो पाते हैं। जैसे वे लोग जो सदा तीर्थ-यात्रा किया करते हैं प्रायः पवित्र नहीं हो पाते।

बन्धु-बान्धवों पर निर्भर करके अपनी आत्मिक उन्नति में देर न कर; जितना तू समझता है उससे जल्द ही मनुष्य तुझे भूल जायँगे। दूसरों की सहायता पर भरोसा रखने की अपेक्षा अभी उत्साहपूर्वक सत्कर्म में लग जाना तेरे लिए अच्छा है।

यदि तू आज अपने विषय में चिन्ता नहीं करता है तो दूसरा कौन तेरे लिए चिन्ता करेगा?

यही समय उत्तम और बहुमूल्य है किन्तु दुःख का विषय है कि नित्य जीवन-धन का अनुसंधान न करके तू आलस्य में अपना समय खो रहा है।

एक ऐसा समय आवेगा जब तू अपना सुधार करने के लिए एक दिन या एक घण्टे का समय चाहेगा किन्तु नहीं कह सकते कि वह भी तुझे मिलेगा या नहीं।

ओ मेरे प्यारे मित्र, यदि तू सदा मृत्यु की चिन्ता करे तो न जाने कितने भय और संकटों से अपनी रक्षा कर सकता है।

इस प्रकार जीवन बिताने की चेष्टा कर कि मृत्यु के समय भय की जगह तुझे आनन्द हो। सांसारिक वस्तुओं को मृत और असार समझने का अभ्यास कर और भगवान् का सानिद्धय-लाभ कर; अस्थायी वस्तुओं की ओर उदासीन हो जा जिससे मुक्त होकर तू भगवान् के समीप जा सके। तपस्या-द्वारा शरीर का दमन कर जिससे तुझमें आत्म-विश्वास उत्पन्न हो।

ऐ अबोध, जब इसी का निश्चय नहीं है कि तू एक दिन भी बचेगा या नहीं तब दीर्घ आयु की प्रतीक्षा तू क्यों करता है ?

न जाने कितने इस प्रकार की भूल में पड़कर हठात् प्राण-त्याग करते हैं। कितनी बार सुना जाता है—"अमुक व्यक्ति तलवार से कटकर मर गया, अमुक डूब गया, अमुक किसी ऊँचे स्थान से गिरकर मर गया, अमुक खाते-खाते मर गया, अमुक का खेलते-खेलते प्राण निकल गया। कोई आग में जलकर, कोई कटकर, कोई महामारी में और कोई चोरों के आघात से मर गया !"

इस प्रकार सबका ही परिणाम मृत्यु है और मानव-जीवन छाया की तरह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

मरने के बाद कौन तुझे स्मरण करेगा और कौन तेरे लिए प्रार्थना करेगा ? अतः हे प्रिय बन्धु, इस समय जो-कुछ करते बने कर ले; पता नहीं किस समय मृत्यु हो जायगी और मृत्यु के बाद तेरा क्या परिणाम होगा ?

जबतक समय है, स्थायी विभूतियों का संचय करले। केवल अपने आत्मिक स्वास्थ्य की चिंता कर। आत्म-चिंतन में रत रह।

महापुरुषों और हरिजनों की संगत कर और उनके कार्यों का अनुगमन कर जिससे इस अस्थायी जीवन का अन्त होने पर वे तुझे नित्य-स्थायी आवास में ग्रहण करें।

अपने को पृथ्वी पर एक यात्री और अभ्यागत समझ जिसे दुनिया के कार्यों से कोई मतलब नहीं।

अपने हृदय को उठाकर ईश्वर में लगा क्योंकि यहाँ तेरा कोई स्थायी आवास नहीं है। प्रतिदिन तू अपनी प्रार्थना, उच्छ्वास और अश्रु को भगवान् के उद्देश्यों की ओर प्रेरित कर जिससे मृत्यु के बाद तेरी आत्मा अनन्त आनन्द के साथ प्रभु के समीप जाय।

[२४]

पापी का विचार और दण्ड

सब बातों में परिणाम का विचार कर। इसे याद रख कि जिस अन्तर्यामी से कुछ छिपा नहीं है उन्हीं के सामने न्याय के लिए तुझे खड़ा होना होगा। वे कुछ उज्र-आपत्ति नहीं सुनेंगे, न रिश्वत से उन्हें प्रसन्न किया जा सकेगा, वे तो जो-कुछ तूने किया है, उसी का यथार्थ विचार करेंगे।

ऐ अभागे अबोध पापी! जब तू साधारण प्रतिष्ठित मनुष्यों की दृष्टि से डरता है तो जो तेरी सब बुराइयों को जानते हैं उनके सामने तू क्या उत्तर देगा?

जिस महाविचार के दिन सबको अपनी सफ़ाई देनी होगी और जिस समय एक का जवाब दूसरा न दे सकेगा, उस दिन के लिए तू अपने को क्यों तैयार नहीं करता?

इस समय अपने परिश्रम का फल तू पा सकता है, इस समय तेरा रोदन भगवान् सुनेंगे, तेरे पश्चात्ताप को स्वीकार करेंगे, इस समय संताप तेरे लिए संतोष-जनक और आत्मशोधकारी होगा। सच्चे धैर्यशील मनुष्य आत्म-निरीक्षण और आत्म-संशोधन का सुयोग ढूँढते हैं; वे अपनी हानि

की अपेक्षा हानि करनेवाले के कुस्वभाव के लिए अधिक दुःख अनुभव करते हैं; वे अपने विरोधियों का अपराध हृदय से क्षमा करते और उनके लिए भगवान् से प्रार्थना करते हैं; किसी के निकट दोषी होने पर वे क्षमा माँगने में विलम्ब नहीं करते; क्रोध की अपेक्षा दया करने में वे अधिक तत्पर दिखाई देते हैं; वे आत्म-दमन करते और अपने शरीर को आत्मा के अधीन रखने में सदा यत्नवान रहते हैं।

आगे पाप का फल भोगने की अपेक्षा इसी समय पाप और बुरी अभिलाषाओं को नष्ट कर डालना उचित है।

शरीर के प्रति अतिशय ममता के वशीभूत हो हम आत्म-वंचना करते हैं। हे पापी, तेरे पाप नरक की अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए लकड़ी का काम देंगे। तू इस समय जितना ही सुखप्रिय होगा और शारीरिक सुख की अभिलाषा करेगा परलोक में अनुताप की अग्नि उत्तप्त होकर तुझे उतनी ही यन्त्रणा देगी।

जिस मनुष्य ने जिस-जिस विषय में पाप किया है उसे उन्हीं विषयों में घोर दण्ड प्राप्त होगा।

वहाँ आलसी तप्त शूलों से बेधे जायँगे और पेटू घोर क्षुधा और तृष्णा से पीड़ित होंगे; विलासी और रस-रंगप्रिय लोग जलते हुए लोहों और खौलते हुए गंधक से जलाये जायँगे; ईर्ष्यालु पागल कुत्तों की भाँति शोक से चिल्लायँगे और यद्यपि वहाँ भयजनक कोई वस्तु नहीं होगी फिर भी वे अपने आप दुःख से विकल एवं विदग्ध होंगे। अभिमानी लज्जा और दीनता से दब जायँगे और लोभी अपनी तुच्छ आवश्यकताओं की

पूर्ति न होने के कारण अत्यन्त कष्ट पावेंगे। वहाँ प्रत्येक पाप का उपयुक्त दण्ड मिलेगा। यहाँ के हजारों वर्ष के कष्ट की अपेक्षा वहाँ एक घड़ी की यंत्रणा और कठोर होगी।

वहाँ दण्डित पापियों को जरा भी विश्राम न मिलेगा; यहाँ तो कभी-कभी परिश्रम से छुट्टी मिल जाती है और मित्रों की सहानुभूति और सान्त्वना भी प्राप्त होती है।

इसलिए यहाँ अपने पापों के लिए पश्चात्ताप कर जिससे इस न्याय-दिवस को तुझे भगवद्भक्तों के बीच स्थान मिले।

वहाँ साधु और सत्कर्मी जन दुःख देने वालों के विरुद्ध खड़े होंगे। जिन्हें आज मनुष्य की निन्दा सहन करनी पड़ती है, उस समय वे ही उनका न्याय करेंगे। उस समय दीन-दरिद्र और नम्र अत्यधिक आत्म-विश्वास का अनुभव करेंगे और अहंकारी चारों ओर से भय-ग्रस्त होंगे।

उस समय प्रकट होगा कि जो साधु पुरुष इस संसार में भगवान् की भक्ति में पागल थे, वे ही सच्चे ज्ञानी हैं। उस समय दुष्टता का मुँह बन्द हो जायगा और भगवत् इच्छा के लिए कष्ट भोगने वालों का हृदय आनन्द से भर जायगा। उस समय भक्त सुखी होंगे और अधार्मिक विलाप करेंगे।

उस समय विलासी लोगों की अपेक्षा जितेन्द्रिय और कष्ट-सहिष्णु लोग अधिक सुखी होंगे।

उस समय साधारण वस्त्र तेजोमय हो जायगा और बहुमूल्य वस्त्र तुच्छ मालूम पड़ेगा।

उस समय दरिद्र की कुटी स्वर्णमण्डित राजमहल से अधिक आदर पायेगी।

उस समय संसार के सम्पूर्ण पराक्रम की अपेक्षा धैर्य हमारे लिए अधिक उपकारी और सहायक होगा।
उस समय सम्पूर्ण सांसारिक ज्ञान की अपेक्षा नम्र आज्ञाकारिता अधिक ऊँचा स्थान पायगी।
उस समय गम्भीर दर्शन-विद्या की अपेक्षा सरल और निर्दोष अन्तःकरण अधिक सुखदायक होगा।
उस समय संसार के सम्पूर्ण धन-वैभव की अपेक्षा धन के प्रति उपेक्षा ही अधिक आदरणीय होगी।
उस समय मृदु एवं सुस्वादु भोजन की अपेक्षा एकाग्र प्रार्थना से तुझे अधिक तृप्ति होगी।
उस समय 'बहुत बोला हूँ', सोचकर नहीं वरन् समुचित मौनावलम्बन किया है, यही याद कर शान्ति मिलेगी।
उस समय मधुर शब्दों की अपेक्षा सत्कर्म ही अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।
उस समय सम्पूर्ण पार्थिव आमोद-प्रमोद की अपेक्षा सरल एवं निर्दोष जीवन तथा कठोर तपश्चर्या से अधिक सन्तोष प्राप्त होगा।
इस समय थोड़ा कष्ट-सहन करना सीख ताकि आगे अधिक दुस्सह यंत्रणाओं से तुझे मुक्ति मिले।
यहाँ यदि थोड़ा दुःख तू सहन नहीं कर सकता तो नरक की भयानक यंत्रणा कैसे सहन करेगा ?
यदि तुझे ज़रा-सी वासना असन्तुष्ट कर देती है तब नरक में तेरी क्या गति होगी ?
अरे, इसे गाँठ बाँध ले कि तू दोनों प्रकार का आनन्द नहीं पा

सकता; यदि तू इस संसार का सुख भोगना चाहे और सच्चिदानन्द में मिलकर स्वर्ग का भी राज्य भोगना चाहे तो ये दोनों बातें एक साथ संभव नहीं हैं।

तू आजतक सांसारिक प्रतिष्ठा और भोग-विलास का जीवन बिताता रहा पर यदि आज ही तेरी मृत्यु हो जाय तो ये तेरे किस काम आवेंगे ?

अतएव भगवान् की भक्ति और सेवा को छोड़ सब बातें व्यर्थ हैं क्योंकि जो अपने हृदय की सारी शक्ति से भगवान् की भक्ति करता है वह मृत्यु, दण्ड, दुःख, यंत्रणा, नरक किसी से नहीं डरता; उसका परिपूर्ण प्रेम उसके लिए भगवान् तक पहुँचने का मार्ग सरल और सुरक्षित कर देता है।

जो पाप में सुख मानता है वह मृत्यु और अपने कर्मफल से डरे, यह आश्चर्य की बात नहीं है।

यदि प्रेम तुझे पाप से निवृत्त न कर सके, तो भय से भय तो कर। जो मनुष्य ईश्वर के भय को छोड़ देता है वह अधिक दिनों तक सन्मार्ग पर चलने में समर्थ नहीं हो सकता और शीघ्र ही शैतान के फन्दे में पड़ जाता है !

[२५]

जीवन-संशोधन

भगवान् की सेवा में सदा जागरूक और यत्नवान रह और बार-बार इसे स्मरण कर कि ईश्वरीय उद्देश्यों की सिद्धि और आध्यात्मिक जीवन-यापन के लिए ही तूने सांसारिक जीवन का त्याग किया है।

अतएव सदा ऊँचा उठने का यत्न कर; शीघ्र ही तुझे परिश्रम का फल मिलेगा, तब कोई भय या दुःख तेरे पास नहीं ठहर सकेगा।

इस समय थोड़ा परिश्रम कर; पीछे तुझे विश्राम और नित्यानन्द लाभ होगा। यदि तू श्रद्धा-पूर्वक सत्कर्म में लग जायगा तो निश्चय ही भगवान् उदारतापूर्वक तुझे उसका फल देंगे।

जय पाने की उच्च आशा हृदय में रखना। उचित है किन्तु कभी लापरवाह न हो क्योंकि इससे आदमी शीघ्र शिथिल और अभिमानी हो जाता है।

एक समय की बात है कि एक साधक भय और आशा के बीच डाँवाडोल हो रहा था। एकबार शोक के भार से दबा हुआ वह प्रभु की वेदी के सम्मुख लेट गया और मन में सोचा—"मैं प्रभु के पथ में स्थिर रह सकूँगा, यदि इसे जान पाता तो बड़ा

ही अच्छा होता।" उसने अपने हृदय के अन्दर ही उत्तर में यह देववाणी सुनी—"इसे जानने पर तू क्या करता? जो उस अवस्था में करता, वही इस समय कर; निर्भय रहेगा।" इससे उस व्यक्ति को सान्त्वना और शक्ति मिली और उसने अपने को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया। उसके मन की अस्थिरता दूर हो गई। भविष्य में क्या होगा, इसकी चिन्ता न करके वह सम्पूर्ण सत्कर्मों को ग्रहण करके भगवान् की इच्छा पूर्ण करने में लग गया।

महापुरुष ने कहा है—"भगवान् में विश्वास करके सत्कर्म कर और शान्तिपूर्वक अपने यहाँ निवास कर। इससे तुझे अच्छा फल मिलेगा।"

युद्ध में जो परिश्रम और क्लेश होता है उसके भय से बहुत से लोग सत्कर्म से वंचित रह जाते हैं; जो लोग वीर की भाँति सम्पूर्ण बाधाओं को कुचलकर आगे बढ़ने का साहस रखते हैं वे ही धर्म-पथ पर अग्रसर होते हैं। मनुष्य जितना ही आत्मदमन करके पाप के लिए मृत हो जाता है आत्मिक विषयों में उतना ही ऊँचा उठता है और भगवान् का कृपा-पात्र होता है।

सबकी आन्तरिक कठिनाइयाँ अधिक नहीं होतीं और न सबके आन्तरिक शत्रु समान रूप से प्रबल ही होते हैं। जो सच्चे प्रेमी और उद्योगी हैं, वे वासनाओं को अधिक प्रबल होने पर भी विजय कर लेते हैं और उनकी आत्मिक उन्नति शीघ्र होती है। जो प्रयत्नशील नहीं हैं, परिमिताभिलाषी होने पर भी वे उतनी उन्नति नहीं कर पाते।

आत्म—संशोधन में दो बातें विशेष रूप से सहायक होती हैं। एक यह कि जिस विषय में हम स्वभावतः कमज़ोर हों उससे मन को बलात् हटाकर दूसरे कार्य में लगाये रखना और दूसरी यह कि जिस गुण का विशेष अभाव हो उसकी मात्रा बढ़ाने की अधिकाधिक चेष्टा करना।

दूसरों के आचरण और व्यवहार में जिन बातों को देखकर तुझे असन्तोष होता है उनसे पहले स्वयं छूटने का यत्न कर।

तू जहाँ रहे वहीं आत्मा के उत्थान की चेष्टा कर; यदि कोई अच्छा उदाहरण सामने आवे तो उसका अनुकरण करने की चेष्टा कर। किसी दूषित कर्म का अनुकरण न कर और यदि भूल से ऐसा हो जाय तो शीघ्र ही उससे छूटने का यत्न कर।

तू जिस प्रकार दूसरों के दोषों पर विशेष ध्यान रखता है, वैसे ही दूसरे लोग भी तेरे दोषों पर विशेष दृष्टि रखते हैं।

भगवद्भक्तों को उद्योगी, श्रद्धालु, सदाचारी और संयमी देखकर चित्त को शान्ति और सुख मिलता है; उन्हें आलसी, असंयमी और शिथिल देखकर बड़ा दुःख होता है।

भगवद्भक्त और धार्मिक जन जब अपनी मर्यादा त्याग कर असंगत विषयों में व्यस्त होते हैं तब उनकी बड़ी हानि होती है। तूने जिस धर्म को स्वीकार किया है उसको सदा मन में रख और तुझे दुःख से छुड़ाने के लिए जिस महात्मा (ईसा) ने सूली ग्रहण की उसका सदा स्मरण कर। ईसा के उच्च जीवन को देखकर तुझे अपने आचरणों पर शर्म आनी चाहिए क्योंकि उसके मार्ग का अनुसरण करके भी उसके समान बनने की तू ने बहुत ही कम चेष्टा की है।

अहा, यदि सूली पर जगत् के लिए अपनी बलि देने वाले महापुरुष (ईसा) का हम हृदय से अनुकरण करते तो कितनी जल्दी सत्य का ज्ञान हमें प्राप्त होता।

सच्चे धार्मिक व्यक्ति ईश्वर की समस्त आज्ञाओं को स्वेच्छापूर्वक शिरोधार्य करते हैं। धर्म में शिथिल व्यक्ति अनेक प्रकार के कष्ट और दुःख पाते हैं। क्योंकि उनके मन में शान्ति नहीं होती।

जो लोग असार स्वाधीनता का सुख भोगना चाहते हैं वे सर्वदा ही अस्थिर रहते हैं क्योंकि कोई न कोई विषय उन्हें उद्विग्न किये रहता है।

अहा, मुँह और हृदय से भगवान् का स्मरण करने के अतिरिक्त यदि और कोई काम न होता! यदि भगवान् की सेवा करने के अलावा हम लोगों को दूसरा काम न होता!

अहा, यदि खाना-पीना और नींद की आवश्यकता न होती तो कितने सुख-पूर्वक ईश्वर की स्तुति और आध्यात्मिक अभ्यास में लीन रहने का समय मिलता।

इन्हीं शारीरिक आवश्यकताओं के कारण हमें आध्यात्मिक विषयों में मधुरता का अनुभव करने का बहुत कम अवकाश मिलता है।

मनुष्य जब किसी संसारिक वस्तु में सुख की खोज नहीं करता, असल में तभी वह ईश्वरीय सुख का अनुभव करना आरम्भ करता है। उस समय वह चाहे जिस अवस्था में रहे, उसी में सन्तुष्ट रहता है।

तब वह किसी महान् वस्तु को पाकर हर्ष नहीं करता, न क्षुद्र को

पाकर कातर होता है। वह ईश्वर को सब-कुछ मानकर उसी के चरणों में अपने को पूरी तरह समर्पित कर देता है क्यों-कि सम्पूर्ण वस्तुओं का अस्तित्व उसी के लिए है और सब उसी की इच्छा की पूर्ति करती हैं।

अपने अंत समय का स्मरण कर। याद रख जो समय नष्ट हो रहा है वह कभी लौटकर नहीं आवेगा।

बिना यत्न और उद्योग किये तू कभी आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता। यदि तू शिथिल हो रहा है तो समझ कि तेरा पतन आरम्भ हो गया है किन्तु यदि हृदय से उद्योग करेगा तो भगवान् की कृपा से तुझे बड़ी शान्ति मिलेगी। उद्योगी मनुष्य सभी प्रकार की कठिनाइयों के लिए सदा तैयार रहता है। शारीरिक परिश्रम की अपेक्षा बुरी आदतों और आन्तरिक दोषों को दूर करना और कठिन होता है।

जो व्यक्ति मामूली दोषों को नहीं छोड़ता वह धीरे-धीरे बड़े दोषों के जाल में फँस जाता है।

तू यदि अच्छी तरह दिन बितायेगा तो तेरी संध्या शान्ति और सुख से बीतेगी।

अपने विषय में सावधान हो, अपने को जगा, अपने को चैतन्य कर। और चाहे तू जो कर पर आत्म-निरीक्षण को कभी न भूल।

अपने पाप-स्वभाव को दबाकर तू जितना ही पवित्र बल दिखायेगा उतनी ही तेरी आध्यात्मिक उन्नति होगी।

द्वितीय खण्ड

आन्तरिक जीवन-सम्बन्धी शिक्षा

[१]

आन्तरिक जीवन

प्रभु ने कहा है कि 'स्वर्ग तुम्हारे ही अन्दर है।' अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण से तू भगवान् की ओर प्रवृत्त हो और इस दुःखमय जगत् से ऊपर उठ; तुझे शान्ति मिलेगी।

वाह्य और असार वस्तुओं को तुच्छ समझकर आन्तरिक विषयों में ध्यान लगा, तब तू देखेगा कि तेरे हृदय में ही स्वर्ग उतर आया है क्योंकि ईश्वर का राज्य पवित्रात्मा की शांति और आनन्द में है, जिसे अपवित्र जन नहीं पा सकते।

यदि तू भगवान् के लिए अपने हृदय में उपयुक्त स्थान तैयार कर लेगा तो वह स्वयं ही उसमें प्रकट होकर तुझे सान्त्वना और शान्ति देंगे। प्रभु की सम्पूर्ण महिमा और सौन्दर्य (पवित्र) हृदय में ही प्रकट होता है और उसी में रह कर वे आनन्द की सृष्टि करते हैं।

जिसका अन्तःकरण निर्मल है उसे प्रायः उनका दर्शन होता है और ऐसी आत्माओं के साथ वे मधुर आलाप करते एवं शान्ति प्रदान करते तथा घनिष्ठ परिचय रखते हैं।

हे विश्वासी आत्मन, अपने प्राणाधार के लिए अपना हृदय प्रस्तुत कर जिससे वह आकर उसमें आनन्दपूर्वक निवास करे।

उसका वचन है—"जो मुझे प्रेम करता है वह मेरे आदेश का पालन करता है। उसके अन्तर में मैं प्रकट होता और निवास करता हूँ।"

प्रभु को पाकर ही तू सच्चा धनवान् बन सकता है। वह सभी विषयों में तेरे विश्वस्त सहायक होंगे और मनुष्य के ऊपर निर्भर करने की तुझे आवश्यकता न पड़ेगी। मनुष्य का क्या ठिकाना? वह जो आज है, कल न रहेगा; आज ऊँचाई पर है कल ज़मीन पर लोटता होगा। भगवान् का अवलम्ब तो स्थायी है। वह जीवन के अन्त तक हमारे पास अटल भाव से वर्तमान रहते हैं।

पतनशील और क्षणभंगुर मनुष्य पर, उपकारी और प्रिय होते हुए भी अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता और यदि वह कभी तेरे विरुद्ध भी हो जाय तो इसके लिए कातर होने की आवश्यकता नहीं है। जो आज तेरे पक्ष में है वही कल विरुद्ध होगा। मनुष्य तो प्रायः वायु के समान अस्थिर गति-वाला होता है।

अपनी सारी आशा और भरोसा ईश्वर में ही रख। उसी से भय कर, उसी को प्रेम कर। वह तेरी जवाबदारी लेगा और जिसमें तेरा कल्याण होगा वही करेगा।

यह दुनिया तेरा स्थायी निवास नहीं है; चाहे तू कहीं हो, इस पृथ्वी पर तू प्रवासी, यात्री है; प्रभु के साथ सानिद्धय-लाभ किये बिना तुझे कभी विश्राम नहीं मिलेगा।

तू, इस दुनिया में, चकित होकर क्यों इधर-उधर देखता है; यह तो तेरा विश्राम-भवन नहीं है। स्वर्ग ही तेरा सच्चा विश्रामस्थल

है; दुनिया की ये पार्थिव चीज़ें तो क्षणस्थायी हैं। वे नष्ट होने वाली हैं; उनके साथ तू भी नष्ट हो जायगा। सावधान, उनमें आसक्त न हो जाना अन्यथा लिप्त होकर उनके साथ तू भी विनष्ट होगा। जो प्रभु इन सब वस्तुओं से ऊँचा है उसमें ध्यान लगा।

यदि तू भगवान् का ध्यान करेगा तो कष्ट और दुःख के समय तुझे अपार सान्त्वना मिलेगी और मनुष्यों-द्वारा होने वाले अपमान-अवज्ञा तथा निन्दा के बीच भी तू अविचलित रहेगा।

यदि जीवन में तुझे दुःख और कष्ट नहीं झेलने पड़े तो तेरे धैर्य का तुझे पुरस्कार ही क्या मिला ?

यदि कष्ट उठाने में तू घबड़ाता है तो प्रभु से तेरी मैत्री कैसे निभेगी ?

जिसने प्रभु के निगूढ़ प्रेममय जीवन का रसास्वादन कर लिया है वह अपने सुखासुख का विचार नहीं करता। निन्दा के बीच भी उसे आनन्द का अनुभव होता है क्योंकि वह अपने शरीर की अपेक्षा भगवान् के प्रेम की ही अधिक परवा करता है।

जो सच्चे भक्तिभाव से प्रभु एवं सत्य को प्रेम करता है और अस्वाभविक वासनाओं से निवृत्त हो जाता है वह अबाधगति से ईश्वर की ओर अग्रसर होता और सच्ची शान्ति एवं आनन्द का उपभोग करता है।

जो मनुष्य की बातों एवं विवेचनाओं के अनुसार नहीं वरन् सम्पूर्ण विषयों की प्रकृत अवस्था पर विचार करते हैं वही

सच्चे ज्ञानी हैं। उनकी शिक्षा मनुष्य-द्वारा नहीं वरन् ईश्वरीय प्रेरणा से होती है।

जो सांसारिक विषयों को तुच्छ समझकर आन्तरिक जीवन का निर्माण करने में लगे हुए हैं वे आध्यात्मिक साधना के लिए स्थान या समय-विशेष की अपेक्षा नहीं करते। आत्मार्थी व्यक्ति शीघ्र ही सच्ची चेतना को प्राप्त होते हैं क्योंकि वे कभी अपने को सांसारिक विषयों के अधीन नहीं होने देते। सामयिक परिश्रम अथवा किसी अन्य आवश्यक कार्य के कारण उनकी साधना में विघ्न नहीं पड़ता। जब जैसी जरूरत होती है विचार करके वे अपना कर्तव्य निश्चित कर लेते हैं।

जिनका अन्तःकरण संयत और नियंत्रित है वे मनुष्यों के दुष्ट व्यवहार से कातर नहीं होते। जितना ही मनुष्य बाह्य विषयों को मन में प्रवेश करने देता है, उतना ही अपनी कठिनाइयाँ बढ़ाता और कातर होता है।

यदि तू पाप से ऊँचा उठकर उत्तम अवस्था को प्राप्त करले तो दुनिया की सभी चीजें तेरे कल्याण और उन्नति का साधन बन जायँगी किन्तु बात यह है कि अनेक विषय तेरे सामने आ-आकर तुझे व्यस्त और असन्तुष्ट किये रहते हैं क्योंकि तू अभी तक सांसारिक विषयों से अपने चित्त को पूर्णतः हटाने में समर्थ नहीं हुआ है।

दुनिया की वस्तुओं के प्रति अस्वाभाविक अनुराग से बढ़कर मनुष्य के मन के लिए अनिष्टकारी दूसरी बात नहीं है।

यदि तू बाह्य स्वच्छन्दता को छोड़ दे तो स्वर्गीय विषयों की आलोचना करके असीम आत्मिक सुख प्राप्त कर सकता है।

[२]

नम्र भक्ति

कौन तेरे पक्ष में है, कौन विपक्ष में है इसकी चिन्ता मत कर। प्रत्येक कार्य करते समय यह सोच कि भगवान् की कृपा कैसे होगी।

प्रत्येक कार्य करते समय अन्तःकरण को शुद्ध रख; भगवान् तेरी रक्षा करेंगे। जिसकी रक्षा भगवान् करते हैं, मनुष्य का विरोध उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

यदि तू शान्त और मौन रहकर दुःखों को सहन करेगा तो निश्चय ही भगवान् तेरी सहायता करेंगे। तेरे उद्धार का उपयुक्त समय और उपाय वही जानते हैं इसलिए उनके चरणों में पूर्णतः आत्मसमर्पण करना ही तेरे लिए उचित है।

तेरी सहायता करना और सब प्रकार के भ्रम एवं अज्ञान से तेरा उद्धार करना भगवान् का कार्य है।

दूसरों-द्वारा की जाने वाली निन्दा कई बार हमें नम्र बनाती और हमारे उद्धार में सहायक होती है।

जो अपने दोष को जानकर नम्र और दीन बन जाता है वह अनायास ही दूसरों के विरोध को शान्त कर देता है और जो विरोधी

रहते हैं उन्हें भी अपनी नम्रता-द्वारा अनुकूल बना लेता है।

ईश्वर नम्र व्यक्ति की रक्षा और उद्धार करता है; नम्र को ही वह प्रेम करता और सान्त्वना देता है; नम्र व्यक्ति के सामने वह प्रकट होता एवं उसे ही अपना ओज प्रदान करता है और पतित अवस्था से उठाकर उसे महिमा प्रदान करता है। नम्र लोगों के ही हृदय में वह अपने गुप्त रहस्य को प्रकाशित करता है। और प्रेमपूर्वक उसे अपने समीप खींच लेता है।

विपत्ति और लज्जा में पड़ने पर भी, नम्र व्यक्ति, अपने हृदय में यथेष्ट शान्ति का अनुभव करता है क्योंकि वह संसार पर निर्भर नहीं करता, ईश्वर पर ही भरोसा रखता है।

जब तक तू अपने को सब से तुच्छ नहीं समझता, कल्याण-मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता।

शान्तिप्रिय सज्जन

पहले तू स्वयं शान्ति प्राप्त करले, तभी तू दूसरों को शान्ति प्रदान कर सकता है।

शान्तिप्रिय व्यक्ति, विद्वान की अपेक्षा अधिक उपकारी होता है। रागी मनुष्य के हाथ पड़कर भलाई भी बुराई हो जाती है; वह शीघ्र बुराइयों में विश्वास कर लेता है पर शान्तिप्रिय व्यक्ति सबको उत्तम बनाने की चेष्टा करता है।

जिसने सच्ची शान्ति प्राप्त करली है वह किसी पर सन्देह नहीं करता; जो अतृप्त और चंचल है वह नाना प्रकार के सन्देहों से सदा दुखित और उत्पीड़ित रहता है। वह न स्वयं स्थिर रहता है, न दूसरों को स्थिर रहने देता है। वह दूसरे लोगों के कर्तव्य के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करता है पर अपने कर्तव्यों का पालन करने में सदा असावधान रहता है।

इसलिए सबसे पहले आत्म-संशोधन में चित्त लगा; दूसरों को ऊँचा उठाने की चेष्टा पीछे करना।

तू अपने दोषों के लिए विलक्षण बहाने बनाना जानता है किन्तु दूसरों की बात सुनने के लिए तैयार नहीं होता। अधिक कल्याणकर मार्ग तो यह है कि तू अपने दोषों पर ज्यादा ध्यान दे और अन्य बन्धुओं के दोषों को उदारता की दृष्टि से देख।

यदि तू दूसरों से सहिष्णुता चाहता है तो तुझे भी दूसरों के प्रति सहिष्णुता रखनी चाहिए।

यदि तू जानता कि प्रकृत उदारता और नम्रता से तू कितनी दूर है तो दूसरों पर क्रोध करने की अपेक्षा अपने पर ही तुझे क्रोध होता।

साधु और नम्रजनों का सत्संग कोई बड़ी बात नहीं है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य समान विचारवालों के साथ रहने में सदा ही सुख का अनुभव करता है।

किन्तु कठिनमना और विरुद्धाचारी लोगों के साथ निर्विरोध वास करना उच्चता का लक्षण है और प्रशंसनीय कार्य तथा पुरुषार्थ है।

ऐसे पुरुष थोड़े हैं जो स्वयं शान्ति का अनुभव करते हैं और दूसरों के साथ भी शान्तिपूर्वक रहते हैं। बहुत-से ऐसे हैं जो न स्वयं शान्ति पाते हैं न दूसरों को पाने देते हैं। वे दूसरों के लिए कष्टकर होते हैं पर सब से ज्यादा कष्टकर अपने ही लिए होते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो अपने हृदय की शांति को सुरक्षित रखते हैं और दूसरों में भी शान्ति की स्थापना करने में सचेष्ट रहते हैं।

इसे याद रख कि इस दुःखमय जीवन में जो शान्ति हमें मिल सकती है वह नम्र कष्ट-सहन से ही मिल सकती है; क्लेश के बिना शान्ति नहीं।

जो अविचलित भाव से कष्टों को सहन करता है वही सर्वाधिक शान्ति प्राप्त करता है। वह आत्म-विजयी, जगदीश, प्रभु का मित्र तथा स्वर्ग का उत्तराधिकारी है।

[४]

पवित्र और सरल इच्छा

पार्थिव वस्तुओं से ऊपर उठने के लिए सरलता और पवित्रता, इन दो गुणों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इच्छा में सरलता और प्रेम में पवित्रता होनी चाहिए। सरलता के द्वारा भगवान् का मार्ग प्रकाशित होता है और पवित्रता के के द्वारा हम उसे प्राप्त करते और उसका आस्वादन करते हैं।

यदि तू अपने हृदय को असंयत अभिलाषाओं से मुक्त कर लेगा तो कोई कर्म तेरे मार्ग में बाधक नहीं होगा।

यदि तू केवल भगवान् की इच्छा-पूर्ति और पड़ोसियों के कल्याण की चेष्टा करने में लग जाय तो निश्चय ही तू आन्तरिक स्वाधीनता प्राप्त करने में समर्थ होगा। यदि तेरा हृदय सरल एवं पवित्र हो तो संसार का प्रत्येक प्राणी तेरे लिए जीवन का दर्पण और पवित्र ग्रन्थ के सदृश अनुभव होगा। संसार की कोई वस्तु इतनी क्षुद्र और अपदार्थ नहीं है कि उसमें भगवान् की विभूति वर्तमान न हो।

यदि तेरा हृदय शुद्ध और पवित्र हो तो तू संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं में भलाई देखेगा और उनको ठीक-ठीक समझ सकेगा।

पवित्र हृदय स्वर्ग और नरक को भेद सकता है।

मनुष्य भीतर से जैसा होता है बाहर उसका वैसा ही निर्णय होता है।

संसार में यदि कहीं कुछ आनन्द है तो निर्मलचित्त व्यक्ति अवश्य ही उसके अधिकारी हैं और यदि संसार में कहीं ज्वाला-यंत्रणा है तो दुष्टात्मा उसे विशेष रूप से अनुभव करते हैं।

जिस प्रकार अग्नि में पड़ कर लोहा अपनी मलिनता छोड़ चमकदार हो जाता है उसी प्रकार जो अपने को सम्पूर्णतः भगवान् के चरणों में सौंप देता है उसकी सम्पूर्ण मलिनता नष्ट हो जाती है और वह बिलकुल नवीन मनुष्य बन जाता है।

भीरु आदमी थोड़ा काम देखकर भी घबड़ा जाता है और सान्त्वना के लिए इधर-उधर देखता है किन्तु यदि उसने अपने पर पूर्ण अधिकार कर लिया है और साहसपूर्वक भगवत्-मार्ग पर चल रहा है तो पहले उसे जो बड़ा बोझ का काम प्रतीत होता था वही अब उसको बहुत छोटा और सरल मालूम पड़ता है।

[५]

आत्म-चिन्ता

हमें अपने ऊपर बहुत अधिक विश्वास न स्थापित कर लेना चाहिए क्योंकि हम प्रायः अपने में ईश्वरीय प्रसाद और ज्ञान का अभाव अनुभव करते हैं। हमारे अन्तर में बहुत थोड़ा प्रकाश है; उसे भी प्रायः हम आलस्य के कारण खो देते हैं। भीतर से हम कितने अंधे हैं, इसे कई बार हम अनुभव नहीं करते।

अनेक बार हम अनुचित कार्य कर बैठते हैं और फिर उस अनुचित कार्य के समर्थन में उससे भी अनुचित बहाने ढूँढ़ते हैं।

कभी-कभी जब हम क्रोध या आवेश में होते हैं तो उसे उत्साह समझने की भूल कर बैठते हैं।

हम दूसरों के नगण्य दोषों की प्रायः आलोचना करते हैं पर अपने बड़े-बड़े दोषों की ओर ध्यान नहीं देते।

जब हमें दूसरों के कारण कुछ दुःख होता है तो हम उसका बहुत अधिक बोझ अनुभव करते हैं पर इस बात पर कभी ध्यान नहीं देते कि दूसरे हमारे लिए कितना सहन करते हैं।

जो लोग अपने कर्तव्य-कर्म पर ठीक विचार करते हैं उनके पास दूसरों के विषय में कठोर विचार करने का बहुत कम कारण रह जाता है। मुमुक्षु लोग दूसरों के सम्बन्ध में विचार

करने की अपेक्षा सदा आत्म निरीक्षण को ओर ही ज्यादा ध्यान देते हैं और जो अपनी कमजोरियों के सम्बन्ध में ज्यादा सतर्क रहता है वह सहज ही दूसरों के दोषों के विषय में मौन रह सकता है। तू यदि दूसरों के विषय में मौन रह कर आत्म-चिन्तन में समय और शक्ति नहीं लगाता तो कभी आत्मवान् और भक्तिशील नहीं हो सकता।

तू यदि आत्म-चिन्तन और भगवद्भक्ति में मनोयोग करे तो जो कुछ बाह्य जगत् में तू देखता है उसके कारण कभी विचलित नहीं होगा।

जब तू अपने साथ नहीं रहता तो कहाँ रहता है, इसका विचार कर देख। यदि तू संसार की सब वस्तुओं में दौड़ता फिरता है किन्तु स्वयं अपनी संभाल नहीं करता तो इससे क्या लाभ?

यदि तू मानसिक शान्ति और ईश्वर के साथ सानिद्धय चाहता है तो दूसरे सब विषयों से चित्त हटाकर अपने अन्तर की ओर दृष्टि फेर। यदि तू पार्थिव भावनाओं से निवृत्त हो जाय तो उससे तेरा बड़ा कल्याण होगा।

ईश्वर और ईश्वर-सम्बन्धी जो कुछ है, उसके अतिरिक्त कुछ उच्च महत्, मनोहर और ग्राह्य नहीं है। सांसरिक वस्तुओं से जो सान्त्वना मिलती है वह असार है।

जो ईश्वर को प्रेम करता है उसे संसार की सभी वस्तुयें तुच्छ प्रतीत होती हैं।

ईश्वर नित्य और असीम है; केवल वही प्राणी को तृप्त कर सकता है। वही आत्मा की सान्त्वना और सच्चे हार्दिक आनन्द का विधाता है।

[६]

निर्मल अन्तःकरण का आनन्द

निर्मल अन्तःकरण के दर्शन में ही सत्पुरुष का आनन्द है। अन्तःकरण निर्मल और पवित्र रख, तू सदा आनन्द का अनुभव करेगा।

पवित्र अन्तःकरण अनेक आपदाओं को सहन कर सकता है और कष्टों के बीच भी प्रसन्न रहता है। मलिन अन्तःकरण सदा भयाकुल और शान्तिहीन रहता है।

तेरा हृदय यदि तुझे दोषी न कहे तो तू सदा सुखपूर्वक विश्राम पायेगा। सत्कार्य के अतिरिक्त और किसी कार्य में आनन्द न मान।

पापी को न कभी सच्चा आनन्द मिलता है, न सच्ची शान्ति मिलती है। प्रभु ने कहा है—"दुष्टों के लिए शान्ति नहीं है।" यदि ऐसे लोग कहें भी, कि हम शान्तिपूर्वक हैं और हमारा कुछ अमंगल न होगा, तो उनपर विश्वास न कर। ईश्वर का क्रोध हठात उठकर उनके सारे कार्यों और कामनाओं को भस्म कर देगा।

प्रेम-परायण व्यक्ति अनायास ही कष्ट भोगने में प्रसन्नता का अनुभव करता है क्योंकि वह इसमें प्रभु की विभूति देखता है।

जो वैभव एवं गौरव मनुष्य से मिलता और छीन लिया जाता है वह अल्पकालिक है। संसार-द्वारा मिलनेवाले गौरव के पीछे दुःख छिपा रहता है।

सज्जनों की विभूति उनके अन्तःकरण में निहित है; वे मानवी प्रशंसा और गौरव के भूखे नहीं होते।

सत्पुरुषों का आनन्द ईश्वरजात है और ईश्वर ही उनके आनन्द का निकेत है; उनका आनन्द सत्य पर अवलम्बित है।

जो सत्य एवं नित्य विभूतियों की आकाँक्षा रखते हैं वे ऐहिक गौरव को तुच्छ समझते हैं और जो ऐहिक गौरव के आकांक्षी नहीं वरन् उसे घृणा करते हैं वे निश्चय ही ईश्वरीय विभूति को प्रेम करते हैं। जो मानवी निन्दा-यश से विचलित नहीं होते वे हृदय में असीम शान्ति अनुभव करते हैं।

जिसका अन्तःकरण निर्मल है वह सहज ही सन्तुष्ट एवं शान्त रहता है। दूसरे प्रशंसा करते हैं इसलिए तू पवित्र नहीं हो सकता और दूसरे निन्दा करते हैं इसलिए तू पतित है, ऐसा भी नहीं है। तू जैसा है, वैसा ही रहता है। भगवान् की दृष्टि में तू जैसा है वह मानवी निन्दा-यश से बदल नहीं सकता। वह संसार की निन्दा और यश को कसौटी बनाकर तेरी परीक्षा नहीं करेंगे।

यदि तू अपने अन्तःकरण पर ध्यान रक्खेगा तो दूसरे तेरे विषय में क्या कहते हैं, इस तरफ तेरा ध्यान नहीं जायगा। मनुष्य तो केवल बाहरी बातों को देखता है किन्तु भगवान् हृदय

देखते हैं। मनुष्य कर्म देखकर निर्णय करता है और भगवान् अभिप्राय देखकर तोलते हैं।

सर्वदा सत्कर्म में लगा रहना और अपने को तुच्छ अनुभव करना ही नम्र आत्मा का लक्षण है।

किसी प्राणी से सान्त्वना की आकांक्षा न रखना ही पवित्रता और आत्म-विश्वास का चिन्ह है।

जो अपने लिए कोई बाहरी साक्ष्य नहीं चाहता, उसने भगवान् के चरणों में पूर्णतः आत्म-समर्पण कर दिया है, ऐसा समझना चाहिए। जो अपनी प्रशंसा करता है वह कसौटी पर खरा नहीं उतरता। प्रभु जिसकी प्रशंसा करते हैं, वही परीक्षा में उत्तीर्ण होता है।

आत्मानुभवी सदा भगवान् में ही विचरण करता है और संसार के मायामोह में नहीं पड़ता।

[७]

प्रभु के प्रति एकान्त प्रेम

जो प्रभु के प्रेम में मग्न हैं और उसके लिए अपनी परवा नहीं करते, वे धन्य हैं।

उस प्रियतम के लिए सम्पूर्ण काम्य वस्तुओं का त्याग करना उचित है। अन्यप्राणियों का प्रेम चंचल और अस्थायी होता है किन्तु प्रभु का प्रेम स्थायी एवं कल्याणकर होता है।

जो पार्थिव वस्तुओं में आसक्त होता है वह उन्हीं के साथ पतित होता है किन्तु जो प्रभु का अलिंगन करता है वह चिरकाल तक अटल रहता है।

जब संसार की सम्पूर्ण वस्तुयें तुझे त्याग देती हैं तब भी जो तेरे साथ बना रहता है और तुझे नष्ट नहीं होने देता उस प्रभु को सदा प्रेम कर और उसे ही अपना जीवन-बंधु बना।

चाहे तेरी इच्छा हो या न हो किसी न किसी समय तुझे सम्पूर्ण पार्थिव वस्तुओं से अलग होना ही पड़ेगा। जीवन-मरण में भगवान् के चरणों में अपने को छोड़ दे क्योंकि जब सब असमर्थ होंगे तब वही प्रभु तेरी रक्षा करेगा।

तेरा प्रियतम तेरे हृदय पर एकछत्र अधिकार चाहता है। वहाँ वह केवल अपना सिंहासन लगायेगा।

सम्पूर्ण पार्थिव वस्तुओं का मोह दूर हो जाने पर ही भगवान् तेरे हृदय में निवास करेंगे।

भगवान् को छोड़ अन्य प्राणियों से तू जो आशा रखता है वह एक दिन नष्ट होनेवाली है। वायु-कम्पित तृण के सदृश क्षण-भंगुर मनुष्य पर निर्भर न कर। शरीरी-मात्र तृणवत् हैं एवं उनका समस्त गौरव एक दिन कुम्हलाकर गिर जानेवाले वन-कुसुम के समान है।

यदि तू मनुष्यों के रूप-रंग को देखता है तो शीघ्र धोखा खायगा। यदि तू दूसरों से सान्त्वना चाहता और उपकार की आशा रखता है तो प्रायः तुझे कठिनाइयों और निराशाओं का सामना करना पड़ेगा।

सम्पूर्ण वस्तुओं में प्रभु की खोज करने से निश्चय ही तू उसे पायेगा। किन्तु यदि तू अपनी खोज करेगा तो अपने सर्वनाश का पथ उन्मुक्त करेगा।

[८]

प्रभु के साथ घनिष्ठ मैत्री

भगवान् के सानिद्धय से सभी कुछ उत्तम और सरल हो जाता है पर प्रभु की अनुपस्थिति में सभी बातें कठिन मालूम होती हैं।

जबतक प्रभु हमारे अन्तर में नहीं बोलते, तबतक सम्पूर्ण सान्त्वना असार प्रतीत होती है। जहाँ भगवान् का एक शब्द सुनाई पड़ता है वहाँ हमें असीम आनन्द अनुभव होता है।

सच्चे सुख का समय वही है जब प्रभु हमारी आँखें पोंछकर हमें आध्यात्मिक सुख प्रदान करने के लिए आह्वान करते हैं।

प्रभु के बिना यह जीवन कितना नीरस और कठोर है! उन्हें छोड़ यदि हम दूसरी तुच्छ वस्तुओं में फँस जायँ तो यह कैसी मूर्खता की बात होगी।

भगवान् की कृपा के बिना यह सारा जगत् तेरा क्या कल्याण कर सकेगा? भगवान् के बिना यह जगत् नरक-तुल्य है; भगवान् से सानिद्धय-लाभ करना ही आनन्दमय स्वर्ग है।

भगवान् की छाया में रहने पर प्रबलतम शत्रु भी तेरा कुछ न बिगाड़ सकेगा।

जो प्रभु को प्राप्त कर लेता है वह संसार का सर्वोत्कृष्ट धन और वैभव प्राप्त कर लेता है और जो प्रभु को खो देता है वह सभी कुछ खो देता है ।

जो प्रभु से हीन है वही दरिद्र है और जो उसके साथ सदा आलाप करता है वही सच्चा धनी है ।

किस प्रकार प्रभु से वातचीत की जाती है, इसे जानना ही विज्ञता है और किस प्रकार प्रभु को हृदय में प्रत्यक्ष करना, यह जानना ही परमज्ञान का विषय है ।

नम्र और शान्तमना हो, प्रभु तेरे साथ रहेंगे; निरीह और श्रद्धालु हो प्रभु तेरे हृदय में वास करेंगे । यदि तू बाह्य विषयों में आसक्त है तो प्रभु की कृपा से तेरी आसक्ति छूट जायगी । प्रभु को छोड़ और तू किसकी शरण लेगा ? और किसे अपना वंधु बनावेगा ? जीवन-बंधु विना तू कभी सुखपूर्वक जीवन नहीं विता सकेगा । इसलिए यदि प्रभु को तूने अपना परमप्रिय बन्धु नहीं बनाया तो तू बहुत दुखी और दीन-हीन बना रहेगा । दूसरे किसी प्राणी पर भरोसा रखने से तू अबोध की भाँति कार्य करेगा । अतः प्रभु का अप्रीतिभाजन होने की अपेक्षा समस्त जगत् का विरोध सिर पर उठा लेना ज्यादा अच्छा है ।

इसलिए तेरे जितने प्रिय लोग हों उन सबसे प्रभु को अधिक प्रिय बना । प्रभु को ही अपना अन्तरंग मित्र और प्रियतम समझ।

सब को प्रभु के लिए, और प्रभु को अपने लिए प्रेम कर ।

प्रभु के लिए शत्रु-मित्र सभी को तू अपना प्रिय समझ और सब के लिए भगवान् से प्रार्थना कर कि वह उनके हृदय

में प्रेम उत्पन्न करे और समुचित मार्ग पर चलावे ।

लोग तुझे प्रेम करें वा तेरी प्रशंसा करें, ऐसी इच्छा कभी न कर; ये दोनों चीज़ें तो ईश्वर की प्राप्य हैं (उसे ही मिलनी चाहिएँ ।)

ऐसी इच्छा न कर कि किसी का मन तेरे प्रेम में आसक्त हो और तू भी किसी के प्रेम में आसक्त न हो। अपने हृदय को विशुद्ध और उन्मुक्त रख ।

ईश्वर के सामने अपने हृदय को सदा अनावृत (खुला) और पवित्र रख अन्यथा तू प्रभु के प्रसाद और माधुर्य का स्वाद कभी न पा सकेगा। जबतक तू उनके प्रसाद से आकृष्ट न होगा तबतक कभी इस ऊँची अवस्था तक नहीं पहुँच सकेगा और न कभी सर्वस्व-त्याग करके उसका सानिध्य ही लाभ कर सकेगा ।

जिसे भगवद्विभूति प्राप्त है वही अपनी शक्ति से सब कुछ कर सकता है और जब वह विभूति चली जाती है तो मनुष्य नितान्त दीन-हीन और दुर्बल हो जाता है और उस समय दुःख एवं पीड़ा भोगने के लायक ही रह जाता है ।

कष्टों से पराजित और निराश न हो वरन् भगवान् की इच्छा पर अपने को सम्पूर्णतः छोड़ दे । जो भी कष्ट-दुःख आ पड़े उसे प्रभु की महिमा के लिए चुपचाप सहन कर। यह याद रख कि शिशिर के बाद बसन्त, रात के बाद दिन और तूफान के बाद शान्ति का आगमन होता है ।

[६]

सान्त्वना का अभाव

जब हमें ईश्वरीय सान्त्वना प्राप्त होती है तो मनुष्य-द्वारा मिलने-वाली सान्त्वना हमें अपने आप तुच्छ मालूम पड़ती है। पर मानवीय और ईश्वरीय दोनों प्रकार की सान्त्वना का अभाव सहन कर भगवान् की महिमा के लिए प्रसन्नचित्त से दुःखों को स्वीकार करना और स्वार्थ-परता तथा आत्मश्लाघा का पूर्ण त्याग करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

जब जीवन में भगवान् का प्रसाद (Grace) उपस्थित हो तो सुखी और भक्ति-परायण होना कौन बड़ी प्रशंसा की बात है? इतना तो सभी करते हैं। जिसके जीवन में ईश्वर का प्रसाद प्रकाशित होता है वह धीरे-धीरे धर्म-मार्ग पर अग्रसर होता ही है।

सर्वशक्तिमान प्रभु जिसे धारण करते हैं और सर्वश्रेष्ठ पथ-प्रदर्शक जिसका संचालन करता है वह अपने बोझ को बोझ नहीं समझता, इसमें आश्चर्य क्या है?

हम सदा ही सुख और सान्त्वना की खोज में रहते हैं अतः पूर्ण-आत्मत्यागी होना हमारे लिए बड़ा ही कठिन है।

जिन्होंने धर्मार्थ प्राण दिया है उन्हीं साधुओं ने [illegible] विजय प्राप्त की है और जगत् में जो कुछ सुख-जनक समझा जाता

है उसको उन्होंने तुच्छ समझकर त्याग दिया है । भगवद्भक्ति के लिए उन्होंने प्रियजनों का बिछोह भी सहन किया है। उन्होंने ईश्वर-प्रेम के द्वारा मानव-प्रेम को पराजित किया है। और मनुष्य द्वारा मिलनेवाली सान्त्वना की इच्छा करने की अपेक्षा ईश्वर की इच्छा पालन करने को श्रेयस्कर समझा है।

इसलिए भगवद्भक्ति के लिए अपने ऐसे प्रियजनों के प्रेम का भी त्याग कर जो तुझे अपने जीवन के लिए आवश्यक मालूम पड़ते हैं। यदि कोई प्रिय बन्धु तुझे त्याग दे तो दुःखी मत हो। एक दिन तो सब का बिछोह होना ही है।

कोई यदि अपने ऊपर विजय प्राप्त करके अपने को पूर्णतः ईश्वरार्पण कना चाहे तो उसे अनेक आन्तरिक युद्धों में प्रवृत्त होना पड़ेगा।

जब मनुष्य अपनी निजी शक्ति का गर्व करके कोई काम करना चाहता है तो वह मानवीय सान्त्वना का आश्रय ग्रहण करने को बाध्य होता है। प्रभु का सच्चा भक्त ऐसी सान्त्वना की इच्छा नहीं करता, न इन्द्रियलब्ध माधुर्य से प्रलुब्ध होता है वरन् धर्म-पथ की कठिन परीक्षाओं एवं कष्टों को धीरता-पूर्वक सहन करता है।

यदि भगवान् तुझे आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करें तो कृतज्ञता-पूर्वक उसे ग्रहण कर। यह मत सोच कि यह तेरे किसी गुण का फल है वरन् सदा ऐसा मान कि यह भगवान् की कृपा का फल है। इसके लिए अभिमान मत कर वरन् और भी अधिक दीनता एवं नम्रता के साथ अपने कार्यों के सम्बन्ध में

सतर्क होजा क्योंकि शीघ्र ही यह समय बीत जायगा और प्रलोभनों का आक्रमण होगा।

यदि सान्त्वना तुझसे कभी छिन जाय तो निराश न हो; नम्रता-पूर्वक भगवत्कृपा की प्रतीक्षा कर। भगवान् अवश्य तेरी आशा पूरी करेंगे।

जिन्होंने ईश्वरीय पथ का परिचय पा लिया है उन्हें ऐसी घटनायें आश्चर्यजनक या असाधारण नहीं बोध होतीं क्योंकि अनेक साधुओं के जीवन में वे चरितार्थ हुई हैं। एक सन्त ने कहा है—"अपने सुख की अवस्था में मैंने गर्व करके कहा था कि मैं कभी विचलित नहीं होऊँगा।" पर भगवद्विभूति का अभाव होने पर मुझे विनय करनी पड़ी—'हे प्रभु, तुम अपना मुख छिपा लेते हो तो मैं व्याकुल हो जाता हूँ। अब मैं सदा तुझे पुकारूँगा, हे मेरे स्वामी, मुझे भुला मत देना।" पीछे अपनी निरंतर प्रार्थना का फल पाकर उन्हीं सन्त ने कहा है—"प्रभु ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर मुझपर दया की और मेरे सहायक हुए।" प्रभु ने उनकी सहायता कैसे की? साधु स्वयं कह गये हैं—"तू ने मेरे दुःख को आनन्द में बदल दिया है, तूने मुझे आनन्द से वेष्ठित कर रक्खा है।"

जब जगत् के बड़े-बड़े साधु इस प्रकार के प्रलोभनों और परीक्षाओं में पड़ चुके हैं तब हमारे-जैसे दीन-दुर्बल मनुष्य कभी उत्तप्त और कभी शांत हो जाते हैं, इसमें आश्चर्य क्या है?

प्रभु की महत् दया और विभूति को छोड़ हम और किस पर भरोसा करें?

सज्जनों, धर्मबन्धुओं और विश्वस्त मित्रों का सत्संग हो, धार्मिक ग्रन्थों का सुन्दर संग्रह हो, मधुर भजन सुनने को मिलें पर यदि भगवान् की कृपा न हो तो इनसे बहुत ही थोड़ा लाभ होता है।

ऐसे समय धैर्य रखने और भगवान् की इच्छा का अनुसरण करने के सिवा कल्याण का दूसरा उपाय नहीं है।

मैंने जीवन में ऐसा कोई भक्त नहीं देखा जिसका उत्साह कभी कम न हो और जिसकी शांति एवं सान्त्वना कभी कम न हुई हो। ऐसा कोई महान् साधु या संत नहीं है जो कभी प्रलोभनों एवं परीक्षाओं में न पड़ा हो।

जिसने ईश्वर के लिए कष्ट नहीं भोगा है वह ईश्वर-दर्शन के योग्य नहीं है।

जीवन में यदि कभी प्रलोभन, परीक्षायें और कठिनाइयाँ आवें तो याद रख कि इनकी समाप्ति के बाद तुमपर भगवान् की कृपा अवश्य होगी। जो कष्टों में तपकर खरे निकलते हैं उन्हें ही स्वर्गीय शान्ति मिलती है। प्रभु ने कहा है—"जो पार्थिव विषयों पर विजय प्राप्त कर लेता है उसे ही मैं जीवन-वृक्ष का फल खाने को देता हूँ।" भगवान् का आश्वासन हमें इसीलिए मिलता है कि हम दुःख और कष्ट सहने में अधिक समर्थ हों। उसके बाद प्रलोभन भी आते हैं जिससे मनुष्य को अपनी विभूति पर अहंकार न हो; शैतान कभी सोता नहीं और शारीरिक वासनायें एकदम मर नहीं जातीं अतः युद्ध के लिए अपने को सदा प्रस्तुत रख। तेरे चारों ओर सदा ही शत्रु लगे रहते हैं।

[१०]

भगवत्कृपा के लिए कृतज्ञता

जब तेरा जन्म परिश्रम करने के लिए हुआ है तब तू विश्राम का आकांक्षा क्यों करता है ? सान्त्वना की अपेक्षा धैर्य और सुख की अपेक्षा दुःख सहने के लिए अपने को तैयार कर।

यदि सदा आध्यात्मिक आनन्द और सान्त्वना मिल सकती तो कौन ऐसा है जो उसे न चाहता ? क्योंकि आत्मिक शान्ति सांसारिक और शारीरिक सम्पूर्ण उल्लासों से श्रेष्ठ है।

सम्पूर्ण सांसारिक आमोद असार और एकाङ्गी है; आध्यात्मिक आनन्द ही सुन्दर और निर्मल है; भगवान् की कृपा से पवित्र हृदय में उसका प्रवेश होता है।

किन्तु कोई इस दिव्य आध्यात्मिक आनन्द को अपनी इच्छानु-सार जब चाहे तब भोग नहीं सकता। क्योंकि एक न एक प्रलोभन लगे ही रहते हैं।

मन की मिथ्या स्वाधीनता और (मिथ्या) आत्म-निर्भरता ईश्वर-दर्शन के प्रतिकूल हैं।

भगवान् सान्त्वना देकर हमारा मंगल साधन करते हैं परन्तु कृतज्ञता-पूर्वक अपना सर्वस्व उनके चरणों में समर्पण न करके हम बड़ी भूल करते हैं। इसीलिए भगवत्कृपा और

विभूति का स्रोत हमारे अन्दर अबाध रूप से प्रवाहित नहीं होने पाता।

जो कृतज्ञता स्वीकार करते हैं उन्हीं को ईश्वरीय प्रसाद मिलता है। अभिमानी उससे वंचित रहते हैं और नम्र व्यक्ति उसके अधिकारी होते हैं।

जिस सान्त्वना से भूलों के प्रति अनुताप नष्ट हो जाय और जिस ध्यान से मन में अहंकार जन्मे उसे मैं नहीं चाहता। क्योंकि सभी उच्च वस्तुयें पवित्र नहीं होतीं, सभी मधुर पदार्थ उत्तम नहीं होते एवं सभी वासनायें शुद्ध नहीं होतीं और हमको प्रिय लगनेवाली सभी वस्तुयें, ईश्वर को स्वीकृत नहीं होतीं।

जिस प्रसाद (Grace) द्वारा हम अधिकाधिक नम्र, पवित्र, और आत्म-विस्मरणशील बनें, उसे ही हम प्रसन्न मन से ग्रहण करेंगे।

जो मनुष्य ईश्वर-द्वारा प्रसाद मिलने से बुद्धिमान और उसके लौटा लिये जाने से ज्ञानी हुआ है वह आत्म-श्लाघा के फंदे में कभी नहीं पड़ता वरन् अपने को दीन-हीन मानने में ही उसे आनन्द मिलता है।

जो भगवान् का है वह भगवान् को दे; जो तेरा है वह तू ले। भगवान् की कृपा के लिए उसे धन्यवाद दे और अपने दोषों के लिए पश्चात्ताप कर।

तू सब से निम्न स्थान पर बैठ, तुझे सर्वोच्च स्थान मिलेगा। याद रख छोटों को छोड़कर बड़े खड़े नहीं रह सकते।

जो ईश्वरीय दृष्टि से सर्वप्रधान साधु हैं वे अपने विचार से अपने

को सर्वापेक्षा क्षुद्र समझते हैं। वे जितने महान होते हैं, उतने ही नम्र होते हैं।

जो सत्य और स्वर्गीय महिमा से पूर्ण हैं, वे असार महिमा की इच्छा नहीं करते।

जो ईश्वर में बद्धमूल और संसक्त हैं वे आत्म-श्लाघा नहीं जानते।

जो ईश्वर को ही एकमात्र मंगलदाता समझते हैं वे मनुष्य की प्रशंसा की इच्छा नहीं करते; वे केवल भगवद्विभूति की इच्छा रखते हैं। वे चाहते हैं कि साधुओं में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा हो और इसके कारण ईश्वर की महिमा का प्रकाश बढ़े।

क्षुद्रतम दान के लिए भी कृतज्ञ हो, इसके कारण तू उससे अधिक बड़ा दान पाने के उपयुक्त होगा। क्षुद्रतम दान भी तेरी दृष्टि में महत्वपूर्ण हो।

यदि तू दाता के गुणों का स्मरण करेगा तो उसका कोई भी दान तुझे क्षुद्र या तुच्छ नहीं बोध होगा। ईश्वर जो देता है वह कभी क्षुद्र नहीं होता।

कष्टों के लिए भी हमें भगवान् का कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि वे जो कुछ करते हैं, हमारे हित के लिए ही करते हैं।

तृतीय खण्ड

आन्तरिक सान्त्वना

[१

प्रभु का मधुर आलाप

हे स्वामी, तुम जो कहोगे, उसे ही मैं सुनूँगा।

जो प्राणी अपने अन्तःकरण में प्रभु की वाणी सुनते हैं और सान्त्वना पाते हैं, वे धन्य हैं।

जो कान आनन्दपूर्वक दिव्य मधुर रव सुनते हैं और इस संसार के नाना प्रकार के शब्दों को अपने तक नहीं पहुँचने देते वे धन्य हैं।

जो आँखें बाह्य विषयों से हटकर चिरन्तन और चिरानन्दमय में लग जाती हैं वे धन्य हैं।

जो जगत् की सम्पूर्ण बाधाओं को लाँघकर ईश्वरीय कार्य के लिए अपनेको आनन्द-पूर्वक निर्लिप्त रखता है वही धन्य है।

हे प्राणी, इन सब बातों की विवेचना कर और शारीरिक वासना का द्वार बन्द कर जिससे भगवान् की जो वाणी तेरे अन्तर में ध्वनित हो, उसे तू सुन सके।

हमारे प्रियतम कहते हैं कि 'मैं ही तुम्हारा त्राता हूँ, मैं ही तेरी शान्ति हूँ, मैं ही तेरा जीवन हूँ। मेरा सानिद्धय लाभ कर, इससे तुझे शान्ति मिलेगी।'

सम्पूर्ण अस्थायी विषयों का त्याग करके जो नित्यस्थायी है, उसका अन्वेषण कर।

सम्पूर्ण पार्थिव जगत् मायामय है। यदि प्रभु तुझे छोड़ दें तो उस अवस्था में संसार के प्राणी तेरा क्या हित कर लेंगे?

इसलिए सांसारिक विषयों से विदा ले और सच्चिदानन्द को प्राप्त करने की चेष्टा कर; इसी मार्ग में तू सच्चे सुख को पा सकेगा।

[२]

श्रद्धापूर्वक भगवद्वाणी का ग्रहण

वत्स, मेरी बात सुन। मेरे वाक्य इस जगत् के दार्शनिकों एवं ज्ञानी लोगों के सम्पूर्ण ज्ञान से अतीत एवं अति मधुर हैं। मेरा वचन आत्मिक और जीवन-रूप है और मानवी बुद्धि उसका पार नहीं पा सकती।

इन्हें कोरे आमोद के लिए मत सुन; ये नीरव होकर श्रद्धा और नम्रतापूर्वक सुनने के लिए हैं।

मैं बोला—"हे प्रभु, जिसे तुम अपने नियम से शिक्षा और उपदेश देते हो, वह धन्य है। दुष्काल में उसी को शान्ति मिलेगी और इस संसार में कभी वह अपने को परित्यक्त और अनाथ नहीं अनुभव करेगा।"

प्रभु बोले-"अनादि काल से मैं महापुरुषों एवं पैग़म्बरों को सन्देश एवं उपदेश देता आ रहा हूँ। आजतक सब के लिए मेरी वाणी उन्मुक्त होकर प्रवाहित होती रही है किन्तु दुनिया में कितने ही ऐसे हैं जिन्होंने दिल का दरवाजा बन्द रक्खा है और कान से बहरे बने हुए हैं। अधिकांश भगवद्वाणी की अपेक्षा संसार की बातों में ज्यादा रस लेते हैं और मेरी इच्छा के लिए आत्मार्पण करने की अपेक्षा अपनी शारीरिक अभिलाषा की पूर्ति में अधिक पागल दिखाई पड़ते हैं।

जगत् अस्थायी एवं तुच्छ वस्तुओं के प्रलोभनों के व्यापार में व्यस्त है; मनुष्य उन्हें ही पाने के लिए पागल हो उठता है; मैं सर्वोच्च एवं चिरस्थायी वस्तुओं का दान कर रहा हूँ फिर भी इस ओर से मनुष्य का मन अचेत है।

जगत् और जगत् में प्रभु-रूप में विख्यात मनुष्यों की सेवा में मनुष्य जितनी तन्मयता दिखाता है उतनी तन्मयता के साथ मेरी आज्ञा का पालन करने वाला कौन दिखाई देता है?

आश्चर्य है कि थोड़ी आय के लिए मनुष्य दूर देशों की यात्रा करता है किन्तु अनन्त जीवन के लिए एक पग आगे धरने में भी उसे बड़ा कष्ट अनुभव होता है।

एक रुपये के लिए मनुष्य अनेक बार कितने ही लज्जास्पद काम करता है; चाँदी के तुच्छ टुकड़ों के लिए मनुष्य मनुष्य का गला घोंटने के लिए तैयार हो जाता है। असार पदार्थों की प्राप्ति के लिए वह रात-दिन ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाता है।

किन्तु नित्यस्थायी कल्याण के लिए, अमूल्य पुरस्कार के लिए, सर्वोच्च वैभव के लिए तथा अशेष महिमा के लिए वह ज़रा भी कष्ट स्वीकार नहीं करना चाहता।

अत: हे मेरे आलसी और असन्तुष्ट भक्त, तू लज्जित और सावधान हो। विनाश की ओर लोग जितने प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं, उतना जीवन की ओर नहीं।

तू सत्य में रस और आनन्द का जितना अनुभव करता है, असारता में उससे कहीं अधिक रस लेता है॥

कभी-कभी आशा मनुष्य को धोका देती है किन्तु मेरी प्रतिज्ञा किसी को धोका नहीं देती। जो मुझे आत्मार्पण करता और मुझ पर पूर्णतः निर्भर करता है उसे कभी खाली हाथ नहीं लौटना पड़ता।

यदि कोई अन्त तक मेरे प्रेम में स्थिर रहे तो मैं जो कुछ उसे कह चुका हूँ वह अवश्य दूँगा।

मैं साधुजनों का त्राता और भक्तों का रक्षक हूँ। मेरे शब्दों को अपने अन्तःकरण पर लिख ले और सदा उनका ध्यान रख। कष्ट के समय वे तेरे लिए प्रयोजनीय सिद्ध होंगे। जिस बात को तू आज नहीं समझ पाता वे मेरी प्रत्यक्ष अनुभूति होने पर अपने आप तेरी समझ में आ जायँगी।

मैं अपने चुने हुए बच्चों के द्वारा दो स्वतन्त्र मार्गों से चराचर से साक्षात् करता हूँ। एक परीक्षा (प्रलोभन) और दूसरा सान्त्वना।

मैं सदा उन्हें दो बातों की शिक्षा देता हूँ। अपने पापों के लिए अनुताप करो और नित्यस्थायी वैभव को प्राप्त करने में प्रयत्नशील हो।

भक्ति की वृद्धि के लिए प्रार्थना

हे मेरे प्रभु, मेरे लिए तुम सम्पूर्ण उत्तमता की खान हो । और तुम्हारे साथ बोलने का साहस करने वाला मैं ? मैं तेरा सबसे क्षुद्र और अकिंचन दास हूँ । मेरी क्षुद्रता का क्या ठिकाना?

मैं कुछ नहीं हूँ, मेरा अपना कुछ नहीं है और कुछ करने की भी मुझ में शक्ति नहीं है किन्तु हे प्रभु, तुम्हें मेरी याद नहीं भूलती ।

इन सब असार वस्तुओं के बीच केवल तुम्हीं उत्तम, सत् और पवित्र हो; तुम सभी कुछ करने में समर्थ हो, तुम सभी कुछ देते हो, तुम सभी में परिपूर्ण हो रहे हो किन्तु जो पापी है वह तेरे अमृत से अपने को वंचित कर लेता है ।

हे स्वामी, मुझ पर कृपा कर और अपनी विभूतियों से मेरा अन्तःकरण भर दे ।

यदि तू अपनी कृपा और प्रसाद से मुझे सबल नहीं बनायेगा तो यह दुःखार्त्त जीवन मैं किस प्रकार बिताऊँगा ?

हे स्वामी, तू अपना मुँह मुझसे मत छिपा; दर्शन के बिना आखें व्याकुल हैं, दर्शन देने में अब विलम्ब मत कर ! अपनी सान्त्वना से मुझे वंचित मत कर अन्यथा मेरी

आत्मा जलशून्य प्यासी मरुभूमि की तरह तड़पती रहेगी।
हे प्रभु, मैं तेरी इच्छा का अनुसरण कर सकूँ, ऐसी शक्ति दे।
तेरी दृष्टि में जो उपयुक्त और नम्र जीवन है, मैं अपना वैसा जीवन बना सकूँ, ऐसी बुद्धि दे। तू ही मेरा ज्ञान है, तू ही मुझ को सब से अधिक जानता है, जगत् में मेरा जन्म होने के पहले एवं जगत् की सृष्टि होने के पूर्व भी तू मुझे जानता रहा है।
हे जीवन-स्वामी, तेरे चरणों में मैं आत्म-समर्पण करता हूँ।

ईश्वर-साक्षात् में सत्य और नम्रता का आचरण

हे वत्स, मेरे सामने सत्य में विचरण कर, और अपने हृदय की सरलता में नित्य मेरा अन्वेषण कर।

जो कोई मेरे सामने सत्य में विचरण करता है वह दुःखद वासनाओं के आक्रमण से रक्षित रहता है और सत्य स्वयं प्रवञ्चकों से तथा निन्दकों के असार शब्दों से उसकी रक्षा करता है।

सत्य यदि तुझे स्वाधीन करेगा, तब तू सचमुच ही स्वतंत्र होगा और मनुष्य के असार वाक्यों पर ध्यान न देगा।

प्रभु, मुझे अनुभव होता है कि तू बोल रहा है। तू जो कुछ कहता है वह सब मैं ग्रहण करने योग्य बनूँ। तेरा सत्य मुझे ऊँचा उठाये, मेरी रक्षा करे और मेरे परिणाम को स्वस्थ एवं मधुर बनाये।

हे स्वामी, तेरा सत्य मुझे सम्पूर्ण मन्द अभिलाषाओं एवं अविहित प्रेम से मुझे मुक्त करे। ऐसा होने पर मैं मुक्त अन्तःकरण से तेरे साथ विचरण करूँगा।

सत्य कहता है कि मेरी दृष्टि से जो न्याय्य और कल्याणकारी है उसकी ही शिक्षा मैं तुझे दूँगा।

अपने पापों के लिए दुःखपूर्वक अनुताप कर। यह अहंकार कभी न कर कि अच्छे कामों का कर्त्ता मैं हूँ। यह समझ कि मैं एक महापापी हूँ। तू अनेक शत्रुओं के वश में है, उनके बोझ से दबा हुआ है और आत्म-तत्त्व को भूलकर असार वस्तुओं की ओर जा रहा है। इसी मे तू शीघ्र गिर जाता है, शीघ्र पराजित हो जाता है, शीघ्र व्याकुल हो जाता है और शीघ्र ही द्रवीभूत होकर विलीन हो जाता है।

तेरे पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिस पर तू अभिमान कर सके। हाँ ऐसी बातें बहुत हैं जिनके कारण तुझे अपने से ही घृणा होनी चाहिए। हे प्राणी, तू अत्यन्त दुर्बल है। इसलिए तू जो करे उसके लिए मन में न फूल, वह तेरे लिए कोई श्लाघा की बात नहीं है।

जो चिरस्थायी—सदा रहने वाला—है उसके अतिरिक्त और कुछ तेरे लिए महत्वपूर्ण न हो, कुछ भी बहुमूल्य और आश्चर्य-जनक न हो, कुछ भी गिनती के लायक़ न हो कुछ भी उच्च न हो, कुछ भी प्रशंसनीय और अभिलषित न हो।

नित्यस्थायी सत्य ही तेरे लिए सब से अधिक सन्तोषजनक है। अपनी अयोग्यता से तुझे सदा असन्तोष रहना चाहिए।

तेरे अन्दर भी दूसरों की भाँति दोष, पाप और कमज़ोरियाँ हैं—बल्कि दूसरों से ज्यादा हैं। दूसरों के प्रति तुझे जो असन्तोष है, उसकी अपेक्षा अपनी कमज़ोरियों से तुझे ज्यादा असंतोष होना चाहिए।

किसी वस्तु से, निन्दा से भी, न डर, पर पाप से डर। संसार के

द्वारा तेरी उतनी हानि कभी न होगी, जितनी स्वयं तेरे पापों के द्वारा होगी।

बहुत मे लोग मेरे समक्ष सरल श्रद्धालु हृदय लेकर नहीं आते; वे नाना प्रकार की उत्कण्ठा और अज्ञान को लेकर आते हैं; वे मेरा रहस्य जानने तथा ब्रह्म-तत्त्व की छानबीन करने के लिए आते हैं। इन शुष्क तार्किक उत्कण्ठाओं के बीच वे स्वयं अपने (कल्याण) को भूल जाते हैं और अपनी आत्मा का स्वास्थ्य खो बैठते हैं।

अहंकार और उत्कण्ठा के चक्र में पड़कर वे प्रायः अनेक प्रलोभनों में पतित होते हैं।

तू सर्वशक्तिमान भगवान् के न्याय से भय कर।

सर्वात्मा के कार्यों की समीक्षा और उन पर तर्क-वितर्क करने में समय न खो; अपनी बुराइयों, ग़लतियों और पापों का अनुसन्धान कर। देख, तूने कितनी बातों में अनधिकार-चेष्टा और दोष किये हैं और अपनी असावधानी से कितने सत्कार्यों की अवहेलना की है।

किसी की भक्ति दर्शन तक सीमित है, कुछ की चित्रों, मूर्तियों में समाधान पा जाती है। कोई-कोई मुझे मुख में रखता है किन्तु अन्तःकरण में स्थान देने के लिए वह भी प्रायः तैयार नहीं होता।

कोई-कोई ज्ञान से आलोकित एवं प्रेम से परिष्कृत होकर नित्य-स्थायी विषयों की आकांक्षा करते हैं। वे सांसारिक विषयों में रस नहीं लेते। सत्य की भावना उनके अन्तर में जो-कुछ बोलती है उसे वे समझने में समर्थ होते हैं।

[५]

भगवद्भक्ति का आश्चर्यजनक फल

हे परमपिता, मैं तेरा धन्यवाद करता हूँ। मेरे-समान नितान्त दरिद्र जीव को भी तूने अपनी कृपा-कोर से बाँध लिया है।

हे करुणा के सरोवर, हे सम्पूर्ण सान्त्वना के आधार, तेरी जय हो। तेरी कृपा और सान्त्वना के योग्य न होने पर भी तूने समय पड़ने पर मेरी सुधि ली है।

हे मेरे सर्वस्व, हे मेरे प्रियतम, जब तू मेरे अन्तर में प्रकट होगा तो मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण आनन्द से उत्फुल्ल हो उठेगा। तू ही मेरा गौरव है, तू ही मेरे हृदय का परम आनन्द है। तू ही मेरी आशा है और तू ही विपदा में मेरा आश्रय है। अन्यथा मैं तो प्रेम में कच्चा और धर्म में अपूर्ण हूँ और इसीलिए मुझे तेरी सहायता और शान्ति की अतीव आवश्यकता है।

हे स्वामी, तू मुझे सदा दर्शन दे और पवित्र यम-नियम द्वारा मेरे चञ्चल मन को शासित कर। बुरी वासनाओं से मुझे मुक्त कर, सब प्रकार के अनुचित मोह से मेरे हृदय को सुस्थ कर जिससे मैं हृदय से नीरोग एवं पाप से पूर्णरूपेण परिष्कृत होकर प्रेम में उन्नत, दुःख भोगने में साहसी और तेरे मार्ग पर आगे बढ़ने में स्थिरचित्त हो सकूँ।

प्रेम एक महान् और मंगलजनक वस्तु है; केवल प्रेम ही वह पदार्थ है जो प्रत्येक भारी चीज को हलका कर देता है और जो असह्य है उसे सहने की शक्ति अनायास हमारे अन्दर पैदा करता है । प्रेम जो बोझ उठाता है, वह बोझ ही नहीं मालूम पड़ता. वह प्रत्येक कड़वी वस्तु को मधुर और सुस्वादु बना देता है।

प्रेम सदा बहुत ऊँचाई पर रहना चाहता है और किसी नीच एवं तुच्छ वस्तु में बँधकर रहना नहीं चाहता । जिससे प्रेम के अन्तर--दर्शन में बाधा न पड़े और प्रेमी किसी पार्थिव उन्नति से गर्वित या किसी दुःख से पराजित न हो जाय इसलिए प्रेम स्वाधीन एवं जगत् के सम्पूर्ण बंधनों से पृथक् रहना चाहता है।

प्रेम से अधिक मधुर, शक्तिमान, ऊँची, प्रशस्त, मनोहर, उत्कृष्ट और पूर्ण कोई वस्तु स्वर्ग और पृथ्वी में नहीं है। प्रेम ईश्वर से उत्पन्न है और समस्त सृष्ट वस्तुओं से ऊँचा उठकर ईश्वर में ही स्थिर होता है ।

जिनके हृदय में प्रेम वास करता है वे ईश्वरीय बल से उड़ते हैं, दौड़ते हैं और उल्लसित होते हैं । वे अनुरागपूर्ण और स्वाधीन हैं । प्रेम अपना सर्वस्व सबको दे देता है और उसे सभी वस्तुओं में सम्पूर्ण की प्राप्ति हो जाती है क्योंकि सब वस्तुओं से ऊपर सर्वमंगलकर में उसका आश्रय है और उसी से सब प्रकार की भलाइयों का उदय होता है। प्रेम का कोई परिमाण नहीं; वह सब परिमाणों से परे है।

प्रेम किसी भार को भार नहीं समझता। किसी कष्ट को कष्ट

नहीं समझता । जो कुछ वह प्राप्त कर सकता है उससे अधिक पाना चाहता है । अपने लिए किसी वस्तु को वह असंभव और असाध्य नहीं समझता । वह अपने को सब पदार्थों से अधिक शक्तिमान अनुभव करता है और सभी बातों को अपने लिए उचित और प्राप्य मानता है । इसलिए प्रेम सभी विषयों में बलवान है । प्रेमशून्य व्यक्ति जिस कार्य में निराश हो जाता है, प्रेमी उसे पूरा करने में तल्लीन दिखाई देता है ।

प्रेम जाग्रत रहता है; अपने निद्राकाल में भी वह सोता नहीं । श्रान्त होने पर भी प्रेम कभी क्लान्त नहीं होता; चोटीला होकर भी घायल नहीं होता; भयग्रस्त होने पर भी हतबुद्धि नहीं होता । प्रेम जलती हुई दीप-शिखा या मशाल की तरह मस्तक के ऊपर उठकर, सतेज, सम्पूर्ण बाधाओं के बीच निर्विघ्न गमन करता है ।

जो प्रेम करता है वही (आत्मा की) इस आवाज़ को पहचान सकता है ! आत्मा का ज्वलन्त और आकुल प्रेम कहता है—"हे मेरे ईश्वर, हे मेरे प्रियतम, तू केवल मेरा है और मैं तेरा हूँ ।" जब प्रेमी ऐसा अनुभव करता है तभी वह प्रेम का तात्पर्य समझता है और तभी उसके शब्द प्रियतम के कानों तक पहुँचते हैं ।

प्रेम में ही मुझे विस्तार पाने दो जिससे मैं अपने हृदय के मुख से स्वाद लेकर अनुभव कर सकूँ कि प्रेम करना कितना मधुर है । ऐसी शक्ति दे कि मैं प्रेम में द्रवीभूत हो सकूँ और अपने को तेरे प्रेम में निमग्न कर देने में समर्थ हो सकूँ ।

मुझे प्रेम में विलीन होने दे और श्रद्धा-पूर्वक मुझको मुझ से ऊपर उठा।

मुझे एक प्रेम-गान गाने दे। हे मेरे प्रियतम, उच्च, अति उच्च उठाकर, मुझे अपना अनुगमन करना सिखा। अपने गुण-गान में मेरी आत्मा को आनन्द एवं प्रेम से उल्लसित होने दे।

मैं अपने से तुझे अधिक प्रेम करूँ और अपने को भी तेरे ही लिए प्रेम करूँ। जो तेरे प्रेम में रमे हुए हैं उन्हें भी मैं प्रेम करना सीखूँ।

प्रेम तीव्र, विशुद्ध, पवित्र, कोमल, आनन्दमय, शक्तिमान, मधुर, विश्वस्त, ज्ञानमय, स्थायी, साहसी और स्वार्थहीन होता है। जब किसी में स्वार्थपरता आ जाती है तो वह प्रेम से स्खलित हो जाता है।

प्रेम पूर्णद्रष्टा, नम्र और सत् है, कमजोर और हलका नहीं। वह लघु भावों एवं सुखेच्छाओं से पराजित नहीं होता। प्रेम विनीत, विशुद्ध, स्थिर, अविवादी तथा ऊँचा उठानेवाला होता है।

प्रेमी श्रेष्ठतर लोगों के निकट वशीभूत एवं आज्ञाकारी, अपने निकट तुच्छ, ईश्वर के निकट भक्त एवं कृतज्ञ रहता है। जब ईश्वर उसे मधुरता के दान से वंचित रखता है तब भी वह उसके प्रति सर्वदा निर्भय रहता है और आशा नहीं छोड़ता क्योंकि बिना आपदा उठाये कोई प्रेम को जीवन में धारण नहीं कर सकता।

जो कोई सब बातें सहन करने एवं प्रियतम की इच्छा के अनु-

सार पूर्णतः चलने (पूरी तरह आत्म-समर्पण करने) को तैयार नहीं है, वह प्रेमी नाम से पुकारे जाने के योग्य नहीं है। प्रेमी होने के लिए प्रियतम की ख़ातिर, सब प्रकार की कठिनाइयों, आपदाओं और कष्टों का सहना आवश्यक है और किसी दुःखजनक घटना के हो जाने से उससे विमुख होना अनुचित है।

[६]

सच्चे प्रेमी के लक्षण

वत्स, तू अभी तक साहसी और विवेकवान प्रेमी नहीं हो पाया है।

प्रभु आप ऐसा क्यों कहते हैं ?

इसलिए कि ज़रा-सी बाधाओं से ही तू अपने आरम्भ किये काम को छोड़ देता है और व्यग्रतापूर्वक इधर-उधर सान्त्वना खोजता फिरता है। साहसी प्रेमी परीक्षाओं एवं प्रलोभनों के बीच दृढ़तापूर्वक खड़ा होता है। जैसे सुख के दिनों में मैं उसे सन्तुष्ट रखता हूँ वैसे ही दुःख के दिनों में भी मैं उसके लिए असन्तोषजनक नहीं हो उठता।

विवेकवान प्रेमी दाता के प्रेम को उसके दान की अपेक्षा ज्यादा क़ीमती समझता है। दान के मूल्य से वह उसके पीछे छिपी मंगल इच्छा को अधिक अच्छा जानकर चलता है और जिसे वह प्रेम करता है, सब प्रकार के दान एवं विभूतियों को उससे तुच्छ समझता है।

वह उत्तम मधुर प्रीति, जिसका अनुभव तूने इस जीवन में कभी-कभी किया है, मेरी ही विभूति का परिणाम है और उस स्वर्गीय आवास एवं आनन्द का आभास है।

मन की सम्पूर्ण कुवासनाओं और शैतान की मंत्रणाओं का अवज्ञापूर्वक दमन करना ही धर्म का प्रकृत लक्षण है। इसलिए मन में कोई दुष्ट अभिलाषा उपस्थित होने पर, उसके कारण, व्याकुल नहीं होना चाहिए। ऐसे समय भगवान् में बुद्धि को स्थिर रखकर साहसपूर्वक अपने संकल्प की रक्षा कर।

यह भी मिथ्या नहीं है कि कभी-कभी तू हठात् क्षणिक भक्ति के आवेश से अभिभूत हो उठता है किन्तु दूसरे ही क्षण फिर आन्तरिक असारताओं में तू इच्छापूर्वक प्रवृत्त नहीं होता; प्रायः इच्छा के विरुद्ध ही तुझसे वैसे काम हो जाते हैं किन्तु जब तक तू अपनी ग़लतियों को समझ कर उनके लिए अनुताप करता रहेगा और उनके निराकरण में प्रयत्नशील रहेगा तबतक इसका तेरे लिए अच्छा ही फल होगा।

इसे गाँठ बाँध ले कि तेरा अन्तःशत्रु तेरी सब प्रकार की मंगल-इच्छाओं में बाधा देने और धर्माभ्यास से तुझे च्युत करने की चेष्टा करेगा। वह तेरे मन में नाना प्रकार की दुश्चिन्तायें पैदा करके समय-समय पर तुझे भय-भीत करेगा और प्रार्थना एवं उपासना से तुझे विरत करेगा।

कभी उसका विश्वास न करना और तुझे बन्धन में डालने के लिए प्रलोभनों के जो जाल वह बिछायेगा उससे बचे रहना। जब वह अपवित्र चिन्ताओं एवं प्रलोभनों में डालने की चेष्टा करे तो आत्मविश्वासपूर्वक उसे ललकार कर कह—

"ऐ अपवित्र भाव, दूर हो! ऐ दुर्दान्त, लज्जित हो। तू सब से अपवित्र है, इसीलिए तो मेरे कानों में ऐसी बातें

ला-लाकर डालता है। ऐ दुष्ट प्रवञ्चक, मेरे सामने से दूर हो; यहाँ तेरी दाल न गलेगी। तेरे जाल में फँसने की अपेक्षा तो यन्त्रणा-भोग और मृत्यु मेरे लिए श्रेयस्कर है। ऐ शैतान, बस मत बोल, चुप हो। चाहे मुझे कितना ही दुःख भोगना पड़े पर अब मैं तेरी बात नहीं सुनूँगा। भगवान् मेरे आलोक और आश्रय हैं। फिर मैं किसी से डरूँगा क्यों ? यदि संसार की सारी शक्तियाँ मेरे विरुद्ध खड़ी हों तो भी मैं भयभीत होनेवाला नहीं क्योंकि मेरे त्राता और आश्रय भगवान् हैं।"

हे वत्स, वीर सैनिक की तरह दुर्बलताओं से युद्ध कर, इससे यदि कभी तू पतित भी हो जायगा तो मेरी कृपा से पहले से अधिक आशा और उत्साह लेकर ऊपर उठेगा। हाँ, अपने अहंभाव से सदा सावधान रह। भ्रमवश मनुष्य अहंकार के कारण पतित होता है और फिर उसके उन्माद में अंधा ही हो जाता है। अहंकारी प्रायः आत्म-श्लाघा के नशे में गोता खाते हैं। इसलिए तू स्थायी नम्रता और चेतना को हृदय में स्थान दे।

[७]

नम्र वाणी

हे प्रभु ! अति तुच्छ होकर भी, मैं तुझसे बोलने का साहस कर रहा हूँ ।

यदि मैं अहंकार-वश अपने को बड़ा समझने लगूँ तो मेरी दुर्बलतायें तुझे धोका न दे सकेंगी और तू उनकी साक्षी होगा ।

पर यदि मैं आत्म-शासन द्वारा सब प्रकार की यश-लिप्सा से अपने को हटा लूँ और अपने को एक रजकण बना लूँ तो निश्चय ही मुझपर तेरी कृपा होगी, मेरे हृदय में तेरा प्रकाश उदय होगा और सब प्रकार का अहंकार सदा के लिए शून्य के गर्भ में विलीन हो जायगा ।

ऐसा होने पर ही तू यह ज्ञान देता है कि मैं क्या हूँ, क्या था, और कहाँ से आया ? तेरी कृपा के विना मैं तो बड़ा ही दुर्बल हूँ । जब तू सहारा देता है तो मुझमें शक्ति आ जाती है और मैं एक नवीन आनन्द से भर जाता हूँ । आश्चर्य-चकित हो मैं देखता हूँ कि मैं कितनी शीघ्रता से इतने ऊँचे आ गया और तेरे सानिध्य का अनुभव कर सका ।

तेरा प्रेम आवश्यकताओं और खतरों के बीच मेरे लिए अन्धे की लाठी है । वह अनेक बुराइयों से मेरी रक्षा करता है ।

अनुचित राग में पड़कर मैंने तुझे और अपने—दोनों—को खो दिया और तेरी खोज करने एवं केवल मुझे प्रेम करने में फिर अपने को और तुझे पाया।

हे मेरे प्रभु! तेरी जय हो। मैं दीन तेरी कृपा के कितना अयोग्य हूँ किन्तु फिर भी तू अपनी असीम दया और करुणा से मुझे सींचता है।

हे प्रभु! सदा के लिए मेरे अहंकार का नाश कर मुझे नम्र बना और चरणों में मुझे स्थान दे। तू ही मेरी सहाय, मेरा सत् और मेरी शान्ति है।

[८]

सबका अन्तिम कारण और आश्रय

हे वत्स, यदि तू आनन्द-मय होना चाहता है तो मुझे अपना लक्ष्य और आश्रय बना। तेरे इस विश्वास और दृढ़ता से ही तेरा स्नेह पवित्र और परिष्कृत होगा।

मेरा आदेश है कि तू सब विषयों में मुझे आत्मार्पण कर। जिसने तुझे सब कुछ दिया है, मैं वही हूँ।

इसे समझ कि जो सर्वस्थ और सर्वोपरि है उसी मंगलमय से सम्पूर्ण विषय तेरे पास आते हैं, इसीलिए सब विषयों का आदि कारण मानकर मुझे आत्मार्पण करना तेरा कर्त्तव्य है। मेरे ही अन्दर समाकर क्षुद्र और महान्, दरिद्र और धनवान सब जीवन-कूप से जल ग्रहण करते हैं और जो स्वस्थ मन से स्वेच्छापूर्वक हमारी सेवा करते हैं वे सदा मेरी कृपा का अनुभव करते हैं। किन्तु जो मुझे त्याग कर अन्य किसी विषय की श्लाघा करते हैं किंवा अपने मंगल का कर्त्ता अपने को मानकर गर्व से फूलते हैं, वे कभी सच्चे आनन्द को नहीं पाते, न हृदय की विशालता लाभ करते हैं वरन् अनेक विषयों में भारग्रस्त और संकुचित हो जाते हैं।

इसलिए 'मेरे द्वारा कुछ मंगल साधित हुआ है या अन्य किसी मनुष्य में उत्तमता है', ऐसा कहना तेरे लिए उचित नहीं है। यही कहना ठीक है कि सब कुछ मुझ (ईश्वर) से ही हुआ है क्योंकि मेरे अतिरिक्त मनुष्य में सत् और है ही क्या ?

जो ईश्वरीय सत्य है, उसी के द्वारा असार श्लाघा दूर होती है। यदि स्वर्गीय प्रसाद एवं सत्य-प्रेम तेरे हृदय में प्रवेश करेगा तो तुझमें ईर्ष्या या अन्तःकरण की संकीर्णता न रह जायगी।

स्वर्गीय प्रेम सहज ही सब विषयों को पराजित करता है और आत्मिक क्षमता और सम्पूर्णता की वृद्धि करता है।

वत्स, यदि तू विज्ञ है तो तू केवल मुझमें ही रम जायगा और केवल मुझमें ही आशा रक्खेगा। मेरे अतिरिक्त और कुछ सत् नहीं है।

[६]

भगवत्सेवा

हे प्रभु, मैं पुनः श्रीचरणों में कुछ निवेदन करूँगा। तुम मेरे ईश्वर हो, मेरे राजा हो, तुम सर्वोच्च हो। मैं तुम्हीं से बात करूँगा।

हे प्रभु, जो तुझ से प्रेम करते हैं, उनके लिए तेरे माधुर्य का विस्तार कितना अधिक है? फिर अपने प्रेमियों के प्रति तेरे प्रेम का क्या पूछना? तेरा ध्यान करने से जो सुख होता है वह अनिर्वचनीय है। इस सुख को तेरे प्रेमी ही जान सकते हैं।

जब मेरी कोई सत्ता नहीं थी, तू ने मेरा निर्माण किया। जब मैं प्रमाद-वश भटककर तुझ से दूर हट गया तो तू ने फिर कृपा कर के मुझे अपने पास लौटा लिया कि मैं तेरी सेवा कर सकूँ और तेरे मधुर प्रेम का सुख लूटूँ।

हे अनन्त प्रेम के स्रोत! तेरे विषय में मैं क्या कह सकता हूँ! नितान्त मलिन होकर जब मैं विनाश के पथ पर दौड़ता हूँ तो भी तू कृपापूर्वक मुझे स्मरण करता है। हे स्वामी, मैं तेरे इस असीम प्रेम को कैसे भूल सकता हूँ? तू ने अपने दास के प्रति आशातीत दया और अनुपम अनुग्रह एवं प्रेम दिखाया है।

तेरे इस महान् अनुग्रह के बदले में मैं तुझे क्या दे सकता हूँ ?
सर्वस्व समर्पण करके, जगत् को त्याग कर, संन्यासी-जीवन बिताने की क्षमता तो सब में होती नहीं ।
सम्पूर्ण सृष्टि ही तेरी सेवा करने को बाध्य है, फिर तेरी सेवा करना क्या मेरे लिए कोई बड़ा काम होगा ?
मेरे लिए तो तेरी सेवा करना कोई बड़ाई की बात नहीं है किन्तु तू ने जो मुझ-जैसे दरिद्र और अयोग्य एक जन को अपनी सेवा में ग्रहण किया और मुझे अपने प्रिय भक्तों की श्रेणी में रखने की इच्छा की, यही आश्चर्य का विषय है ।
हे स्वामी, मेरा अपना जो-कुछ है और जिसके द्वारा मैं तेरी सेवा करता हूँ वह सब तो तेरा ही है । मैं तेरी जितनी सेवा करता हूँ, उससे अधिक तो तू ही मेरी परिचर्या करता है । तू ने अनुग्रह करके स्वयं मनुष्य की सेवा एवं उसके परित्राण के लिए अपने को उत्सर्ग कर दिया है ।
इन सब उपकारों के लिए मैं तुझे क्या दे सकता हूँ ? यह सारा जीवन मैं तेरी सेवा में लगा दूँ, यही मेरी अभिलाषा है । अहा, यदि एक दिन भी मैं भलीभाँति तेरी सेवा कर सकता तो अपने को धन्य मानता ।
तू मेरा स्वामी है, मैं तेरा दीन-हीन अनुचर हूँ । सम्पूर्ण शक्ति से तेरी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है । उसमें त्रुटि करना मेरे लिए उचित नहीं ।
मैं तेरे गुण-गान और भजन में रम जाना चाहता हूँ । यही मेरी आकांक्षा है । मुझ में जो अभाव है, उसे तू कृपा करके दूर कर दे ।

तेरी सेवा करना एवं तेरे सामने सम्पूर्ण वस्तुओं को तुच्छ मानना मेरे लिए गौरव का विषय हो।

जो स्वेच्छापूर्वक तेरे प्रेम एवं भक्ति में आत्मार्पण करते हैं, वे ही तेरी महान् कृपा के भागी होते हैं।

जो तेरे प्रेम के लिए सम्पूर्ण सांसारिक आनन्द का त्याग करते हैं वे ही पवित्र आत्मा की मधुरतम सांत्वना के भागी होते हैं।

जिन्होंने तेरे लिए सम्पूर्ण सांसारिक चिन्ताओं का परित्याग किया है, उन्हें ही आन्तरिक स्वाधीनता प्राप्त होती है।

अहा, तेरी सेवा कैसी मधुर और आनन्ददायक है! उसके द्वारा यथार्थ ही मनुष्य स्वाधीन और पवित्र होता है।

तेरी मधुर और चिरकांक्षित सेवा में नियुक्त होकर मैं अनन्त आनन्द का अनुभव करूँगा।

[१०]

अन्तर-वासना की परीक्षा एवं संयम

वत्स, अब भी तू अच्छी तरह से सम्पूर्ण विषयों को समझ नहीं पाया है। अब भी ऐसी अनेक बातें हैं जिनका ज्ञान तेरे लिए आवश्यक है।

हे प्रभु, वे कौनसी बातें हैं ?

वत्स, तू अपनी इच्छाओं को मेरी इच्छाओं पर समर्पित करना सीख और आत्म-प्रेमी न होकर मेरी इच्छाओं का अनुगमन कर।

तेरे मन में सदा नाना प्रकार की आकाँक्षायें उदित होकर तुझे अस्थिर रखती हैं। उनके बीच मेरी उपासना का भाव है या तेरा स्वार्थ छिपा है, इसका विचार करके देख।

यदि मैं ही उन सब इच्छाओं का कारण हूँ तो तेरे लिए जो-कुछ मैं निरूपण करता हूँ, उसी में तुझे पूर्णतः सन्तुष्ट रहना चाहिए किन्तु यदि तेरे अन्दर कोई अपनी इच्छा छिपी हुई है तो इसे गाँठ बाँधले कि वही तेरे मार्ग का कण्टक बनकर तुझे दुःखित और भाराक्रान्त कर देगी। इसलिए सावधान, अपनी इच्छाओं पर निर्भर न कर; उनपर मेरी इच्छाओं को प्रधानता दे। ऐसा न करने से तुझे पीछे पश्चात्ताप करना

पड़ेगा और पहले तुझे जो सन्तोषजनक प्रतीत होता था और जिसे सर्वोत्कृष्ट समझकर व्यग्रतापूर्वक पाने की तू इच्छा करता था वही बाद में असन्तोषजनक हो उठेगा। सभी इच्छायें, जो अच्छी मालूम पड़ती हैं, अच्छी नहीं होतीं। इसी प्रकार कितनी ही अच्छी चीजों को, जो बुरी प्रतीत होती हैं, अकस्मात् छोड़ देना उचित नहीं है।

अपनी उत्तम इच्छाओं एवं चेष्टाओं का भी कभी-कभी शासन करना आवश्यक है क्योंकि बाद में अधिक उत्तेजना के कारण तेरे मन में व्याकुलता पैदा होती है जिससे आत्म-शासन के अभाव में, तू दूसरों के सामने कठिनाइयाँ और विघ्न उपस्थित करता है तथा दूसरों-द्वारा जब तुझे आघात् पहुँचता है तो हठात् हतबुद्धि होकर तू पतित होता है।

शरीर को आत्मा के वशीभूत करने के लिए कभी-कभी तुझे वीरता का अवलम्बन और शारीरिक अभिलाषाओं का वीर की भाँति सामना करना आवश्यक है।

जबतक शरीर दुःख-सुख सब के लिए प्रस्तुत न हो और थोड़े में ही सन्तुष्ट होना न सीखे, छोटी-बड़ी सभी बातों में उसे आनन्द न हो और असुविधाओं से घबड़ाना छोड़ न दे तबतक आत्म-दमन करना तेरे लिए उचित है।

[११]

धैर्य एवं इन्द्रिय-दमन

हे प्रभु, मैंने भलीभाँति अनुभव कर लिया है कि धैर्य मेरे लिए अति आवश्यक है क्योंकि इस जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब मेरी इच्छा के साथ दूसरों की इच्छा का विरोध होता है। शान्ति के लिए चाहे जिस पथ का मैं अनुगमन करूँ, अपने जीवन में युद्ध-रहित नहीं हो सकता।

वत्स, यह यथार्थ है किन्तु मेरी इच्छा है कि परीक्षा-हीन शान्ति की खोज न कर वरन् यह याद रख कि जब तू नाना प्रकार के दुःखों में तपकर शुद्ध हो जायगा तभी तुझे सच्ची शान्ति मिलेगी।

तू मन में सोचता होगा कि इस जगत् के मनुष्य कुछ भी कष्ट नहीं सहते अथवा तेरी अपेक्षा बहुत कम सहते हैं किन्तु यह तेरा भ्रम है। जो सुख-विलास में डूबे हुए हैं उनसे भी जिज्ञासा करने पर जाना जा सकता है कि उनके पीछे भी कितना दुःख-कष्ट लगा हुआ है।

तू कहेगा कि उनके पास आनन्द के भी अनेक साधन हैं, वे अपनी इच्छाओं का अनुसरण करते हैं इसलिए दुःख में पड़ने पर भी उन्हें उसका इतना बोझ अनुभव नहीं होता।

अच्छा, यदि यह मान भी लें कि उनकी जो इच्छा होती है वही करते हैं तो कबतक वे ऐसा कर सकेंगे, इसका भी तूने कभी विचार किया है ?

अच्छी तरह समझ ले, धनवान् धुएँ की तरह शून्य में विलीन हो जायँगे। उनके जीवन-सुख की कोई स्मृति भी बाक़ी न रह जायगी।

यह भी सत्य है कि अपने जीवन-काल में भी वे सांसारिक सुख-भोग में तिक्तता, क्लान्ति और भय के बिना विश्राम अनुभव नहीं करते।

कई बार जिसमें वे सुख समझते हैं उसी में अनेक दुःख और कठिनाइयाँ उठाते हैं।

यह भी यथार्थ है कि जिन्होंने असीम सुख का अन्वेषण और अनुगमन किया है उन्हें भी साथ-साथ लज्जा और कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ा है।

हाय, यह सब सुख कैसा क्षणिक है ! कैसा अवैध है !

तब भी मनुष्य ऐसा मत्त और अन्धा है कि वह इसे समझना ही नहीं चाहता और क्षणिक जीवन के असार सुख-भोग के लिए अपनी आत्मा की मृत्यु का अवसर उपस्थित करता है।

इसलिए हे वत्स, तू अपनी इच्छा का अनुगामी मत बन, अपनी कामना पर संयम कर, प्रभु की इच्छा में ही आनन्द मान। वह तेरे अन्तःकरण की सम्पूर्ण वाञ्छनीय वस्तुओं से तुझे संतुष्ट करेंगे।

यदि तू सच्चा आनन्द चाहता है और मुझ से सच्ची शान्ति

पाने का इच्छुक है तो सम्पूर्ण पार्थिव विषयों को तुच्छ मान-
कर मुझे आत्मार्पण कर; तेरी इच्छा पूरी होगी।

ज्यों-ज्यों तू जगत् से अपनी आशा और सांत्वना को हटाकर
उन्हें मुझमें स्थापित करेगा त्यों-त्यों तुझे सच्ची और मधुर
शान्ति मिलेगी।

किन्तु इसे भी जान ले कि बिना जीवन में दुःख भोगे या कठोर
संग्राम एवं तपस्या किये ऐसी दिव्य शांति न मिल सकेगी।

तेरे स्वभाव में जो दुर्बलता मिल गई है वह तुझे प्रतिकूल आच-
रण की ओर ले जायगी किन्तु सावधान रह कर निष्ठापूर्ण
अभ्यास-द्वारा तू उसे पूरी तरह पराजित कर सकता है।

तेरा शरीर तेरे विरुद्ध बोलेगा और उलटी सलाह देगा किन्तु
आत्मा की कठोर साधना के द्वारा तू उसे दमन कर सकेगा।

(वासना का) यह पुराना विषम भुजंग तुझे प्रलुब्ध और अस्थिर
करेगा किन्तु प्रार्थना-द्वारा तू उसे दूर कर सकता है। भग-
वान् के मार्ग में चलकर तू उसका रास्ता रोक सकता है।

[१२]

पूर्णवश्यता

वत्स, तू सब बातों में ऐसा कहने का अभ्यास कर—

"हे प्रभु, यदि यह तेरे लिए संतोषजनक है तो ऐसा ही हो।

हे प्रभु, यदि यह तेरे गौरव के लिए है तो ऐसा ही होने दे।

हे स्वामी, यदि यह मेरे लिए उपयुक्त है और तू इसे मेरे लिए हितकर समझता है तो कृपा करके उसे पूर्ण करने की शक्ति मुझे प्रदान कर।

प्रभु, यदि तू जानता है कि कोई चीज मेरे लिए हानिकर हो सकती है और उसके द्वारा मेरी आत्मा का मंगल नहीं होगा तो मेरे मन से उसकी इच्छा दूर कर। क्योंकि, संभव है, ऐसा इच्छा मनुष्य की दृष्टि से यथार्थ और उत्तम होते हुए भी पवित्र आत्मा के लिए कल्याणकर न हो।"

ऐसा भी देखा जाता है कि जो पहले आत्म-शोध के उत्तम मार्ग पर चलते रहे थे, उनमें से अनेक पीछे भ्रान्त हो रहे हैं।

भगवान् से सदा यह प्रार्थना कर—

"हे प्रभु, मेरे लिए सबसे उत्तम क्या है, इसे तू ही जानता है सुतरां जो तेरी इच्छा हो वही घटित हो।

[१३]

प्रकृत सान्त्वना ईश्वर में ही अवस्थित है

हे नाथ, चाहे मैं जगत् की सम्पूर्ण सान्त्वना और सुख के साधन प्राप्त कर लूँ पर मैं जानता हूँ कि वे अधिक दिन तक रहने वाले नहीं हैं।

इसलिए हे मेरे मन, तू इसे भलीभांति समझ ले कि दीनबन्धु और पतितपावन भगवान् के अतिरिक्त तुझे पूर्ण सान्त्वना और विश्राम कभी प्राप्त न हो सकेगा।

हे मन, यदि तू ऐहिक सुखों को अवैध रूप से पाने की इच्छा करता है तो निश्चय ही दिव्य एवं चिरस्थायी आनन्द को खो देगा। इसलिए संसार में विचरण करते हुए और पार्थिव वस्तुओं का व्यवहार करते हुए भी, चिरस्थायी विषयों की आकांक्षा कर। किसी सांसारिक मंगल के द्वारा तू तृप्त न हो सकेगा।

चाहे तुझे सम्पूर्ण सुख-साधन प्राप्त हों किन्तु तू उनके द्वारा सुखी या धन्य न हो सकेगा। जिससे सम्पूर्ण जगत् निकला है, उस ईश्वर में ही तेरा समस्त सुख निहित है। अबोध मनुष्य जिससे प्रलुब्ध होता और जिसकी प्रशंसा करता है, वह तेरे जीवन का उद्देश्य नहीं है।

समस्त मानवीय सान्त्वना क्षणिक और असार है। अन्तःकरण में जो सान्त्वना स्वयं उद्भूत होती है, वही सच्ची है।

हे स्वामी, तेरी जो भी इच्छा हो उसी पर मैं अपने को चढ़ा दूँ, मुझे ऐसी शक्ति दे । मेरे लिए जिस कार्य या व्यवहार को तू आवश्यक समझे, जिससे तेरा संतोष हो, वही कर । जिस कार्य में तेरी इच्छा हो उसी में मुझे नियोजित कर और सम्पूर्ण विषयों में मेरे साथ तेरी ही इच्छा घटित हो ।

मैं तेरे ही हाथ में हूँ, तुझे आत्मार्पण करता हूँ; तू मेरा यथोचित उपयोग कर और चाहे मैं कहीं रहूँ, तेरी इच्छा प्रेरणा देकर मुझे ठीक स्थान पर पहुँचा देवे ।

प्रभु, मैं तेरा दास हूँ; सब बातों के लिए प्रस्तुत हूँ । अपने लिए नहीं, तेरे ही लिए मैं जीवन धारण करना चाहता हूँ । यदि मैं इसका पालन कर सकूँ तभी मैं चरितार्थ हो सकूँगा ।"

[१४]

ईश्वरार्पण

"हे वत्स, अपनी इच्छानुसार मैं तुझे चलाना चाहता हूँ। तेरे लिए क्या उपयुक्त और मंगलजनक है, इसको मैं जानता हूँ। मानवीय ज्ञान से संचालित होने के कारण तू अपने लिए अनेक चिन्तायें पैदा कर लेता है।"

हे प्रभु, तेरा कथन बिलकुल सत्य है। मैं स्वयं अपने लिए जितनी चिन्ता और यत्न कर सकता हूँ उससे तेरी चिन्ता मेरे लिए कहीं अधिक कल्याणकारी होगी।

जो अपनी समस्त आशा, चिन्ता और भावना—अपना सर्वस्व-तेरे चरणों में अर्पण नहीं कर देता वह अस्थायी नींव पर खड़ा होता है।

प्रभु, यदि केवल मेरी भावना तेरे प्रति अकपट और अविचलित बनी रहे तो तेरी भावना के अनुसार यह जीवन संचालित हो सकता है।

तू जो कुछ मेरे लिए करेगा उसी में मेरा हित होगा। यदि मेरे अन्धकार में रहने से तेरी इच्छा पूर्ण होती हो तो भी मैं कहूँगा—तू धन्य है। मुझे प्रकाश में रखने से तेरी इच्छा पूर्ण होती हो तो भी कहूँगा कि तू धन्य है। यदि तू मुझे

कृपापूर्वक सान्त्वना देता है तो भी तुझे ही धन्य कहूँगा। यदि तू मुझे दुःख देना चाहे तो भी कहूँगा कि तू चिर-धन्य है।

वत्स, यदि तू मेरे साथ चलने की इच्छा करता है तो जैसे आनंद-भोग के लिए प्रस्तुत रहता है वैसे ही दुःखभोग करने के लिए भी तैयार रहना तेरे लिए उचित है। तू वैभवशाली एवं धनवान् हो अथवा दरिद्र एवं दीन-हीन हो, दोनों में ही तुझे संतुष्ट रहना चाहिए।

प्रभु, तेरे हाथ से अच्छा-बुरा मीठा-कड़ुआ, आनन्द-दुःख सभी कुछ ग्रहण करने को तैयार हूँ।

सम्पूर्ण पापों से मेरी रक्षा कर। ऐसा होने से मृत्यु एवं नरक दोनों में से किसी से मुझे भय न रह जायगा।

यदि तू सदा के लिए मुझे अपने से दूर न करे तो मुझपर जो भी दुःख-क्लेश आवेगा, उसे मैं हँसते-हँसते सहूँगा।

[१५]

क्षति-सहन एवं प्रकृत धैर्य

वत्स, तू यह क्या कहता है ? संसार में जो बड़े-बड़े संत एवं साधु पुरुष हुए हैं, उन्हें कितनी कठिनाइयों एवं दुःखों का सामना करना पड़ा है। उनकी याद करके अपने दुःखों एवं कष्टों की शिकायत करना छोड़ दे।

छोटे-बड़े सभी प्रकार के दुःखों को धीरज के साथ सहन करने की चेष्टा कर।

यदि तू अपने को सब प्रकार के दुःख सहने को तैयार रक्खेगा तो बड़े से बड़ा दुःख आ पड़ने पर सहज ही उसे सहन कर सकेगा।

यह मत कह कि "मैं अमुक के लिए यह कष्ट न सहूँगा', न तो यह कह कि "उसने मेरी बड़ी हानि की है और मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया है जिसकी मुझे कल्पना भी न थी इसलिए उसकी खातिर मैं कष्ट क्यों सहूँ ? दूसरा जो-कुछ मुझ पर आ पड़ेगा सह लूँगा पर इसे सहन न करूँगा।"

यह विचार अज्ञान से पूर्ण है क्योंकि यह धैर्य-प्रसूत कर्म की ओर नहीं देखता, न यही सोचना चाहता है कि गौरव का

मुकुट प्राप्त करने के लिए जिस धैर्य की आवश्यकता है, उसका जन्म कहाँ से होगा। वह तो केवल क्षति करने वाले और अपनी क्षति के विषय में ही विस्तार-पूर्वक विवेचन करना चाहता है।

जो अपनी इच्छानुसार किसी विशेष व्यक्ति के लिए, या किसी सीमा तक ही, दुःख भोगने की इच्छा करता है वह सच्चा धैर्यशील नहीं है।

सच्चा धैर्यशील आदमी यह नहीं देखता कि जिसके कारण या जिसके लिए मैं दुःख उठा रहा हूँ वह मुझसे श्रेष्ठ है या मेरी बराबरी का है; मुझ से क्षुद्र है या पवित्र, योग्य है, या अयोग्य है।

वह तो सब को समभाव से देखते हुए जो-कुछ दुःख आ पड़ता है उसे प्रसन्नता-पूर्वक सहन करता है; ईश्वरीय इच्छा समझ कर उसी में अपना कल्याण मानता है।

यदि तू विजयी होना चाहता है तो सदा युद्ध के लिए प्रस्तुत रह। गांठ बाँध ले कि युद्ध के बिना धैर्य का मुकुट तू कभी प्राप्त न कर सकेगा। यदि तू दुःखों से घबड़ाता है तो कहना पड़ेगा कि तू स्वयं विजय-मुकुट को अस्वीकार करना चाहता है। यदि तू गौरव का विजय-मुकुट पाना चाहता है तो वीर की तरह युद्ध कर और जो-कुछ आ पड़े उसे धैर्यपूर्वक सहन कर।

श्रम बिना विश्राम नहीं और युद्ध बिना जय नहीं।

हे प्रभु, जो अपनी शक्ति को देखते हुए मुझे असाध्य प्रतीत होता है, तेरे अनुग्रह से वही सरल और साध्य हो जायगा।

[१६]

दुर्बलता एवं जीवन के दुःखों का ज्ञान

हे प्रभु, मैंने अपने प्रति जो अन्याय किया है, उसे सिर झुकाकर स्वीकार करता हूँ।

सदा ही कोई न कोई क्षुद्र बात मुझे दुखित और विषण्ण किये रहती है।

मैं साहस-पूर्वक सत्कार्य करने की इच्छा करता हूँ किन्तु जरा भी कठिनाई एवं परीक्षा का अवसर उपस्थित होते ही हाथ-पांव फूल जाते हैं।

कभी-कभी छोटी बातों में गुरुतर परीक्षा का अवसर आ पड़ता है। ऐसे समय जब मैं अपने को निरापद समझता रहता हूँ और जब पतन की आशंका बिलकुल नहीं रहती उसी समय अकस्मात् एक प्रचण्ड आँधी आकर मुझे जमीन पर गिरा देती है हे प्रभु, मेरी निम्न अवस्था और सम्पूर्ण दुर्बलताओं पर ध्यान दे। मुझपर दया कर, इस कीचड़ में से मुझे उठा और फिर कभी मैं उसमें न गिरूँ, ऐसी शक्ति मुझे दे।

मैं पतन-शील हूँ और इन्द्रिय-दमन में बड़ा ही दुर्बल हूँ। इसलिए तेरा मार्ग प्रायः छूट जाता है।

जब प्रलोभनों से बचने और उसमें न फँसने की भी इच्छा रहती है तब भी प्रलोभनों का निरन्तर आक्रमण मेरे लिए क्लेशकर और दुःखदायी हो उठता है और रात-दिन इस प्रकार युद्ध में लिप्त रहने की चिन्ता से मैं पीड़ित हो जाता हूँ।

मुझे अपनी दुर्बलता का ज्ञान इसी से होता है कि मेरे मन में घृणास्पद चिन्तायें तो शीघ्र प्रवेश पा जाती हैं किन्तु बाहर बड़े कष्ट से निकलती हैं।

हे सर्वशक्तिमान, चिरप्रियतम, कृपा करके इस दास के श्रम और दुःख को स्मरण कर और जिससे सत्कार्य में प्रवृत्ति हो, ऐसी बुद्धि दे।

हाय, मेरा यह कैसा जीवन है जिसमें एक न एक दुःख और अभाव लगा ही रहता है। एक दुःख जाता है कि दूसरा आ जाता है। पहला युद्ध समाप्त नहीं होता कि दूसरी परीक्षा सिर पर आ खड़ी होती है। जिसमें इतना कड़ुआपन है, जो इतनी दुर्घटनाओं और दुःखों के अधीन है, उस जीवन को कैसे प्रेम किया जा सकता है? जिससे विपद् और मृत्यु का जन्म होता है उसे जीवन ही कैसे कहा जा सकता है?

परिताप की बात तो यह है कि यही जीवन मनुष्य के लिए कैसा प्रिय है और इसी में आनन्द खोजने की वह कैसी अबोध चेष्टा करता है? जगत् को असार कहने वाले तो बहुत हैं किन्तु शारीरिक अभिलाषाओं ने ही उनके ऊपर ऐसा प्रबल प्रभुत्व स्थापित कर रक्खा है कि वे उसे छोड़ नहीं पाते।

शरीर की अभिलाषा, आँख की अभिलाषा और जीवन का अहं-
कार हमें जगत् की ओर ले जाता है किन्तु जब यंत्रणा और
दुःख आता है तो उसी जगत् के प्रति हम घृणा दिखाने
लगते हैं।

हाय, जिसका मन जगत् में आसक्त है, उसे ही अवैध सुखों
की आसक्ति पराजित कर लेती है क्योंकि ईश्वरीय मधु-
रता और धर्म के आन्तरिक सुख को ये कभी देख नहीं
पाते, न कभी उनका स्वाद पाते हैं।

जो जगत् को तुच्छ करके ईश्वर में ही जीते हैं वे ही इस दिव्य
सुख को देख पाते हैं। जगत् किस प्रकार भयंकर भूल में
पड़ा है और कैसे प्रवंचित हो रहा है, यह भी वे स्पष्ट देख
पाते हैं।

[१७]

मिलन की उत्कण्ठा

हे प्रभु, हे मेरे ईश्वर, तू सब की अपेक्षा उत्तम और असीम है; तू परात्पर है; तू सर्वशक्तिमान, पूर्ण और प्रचुर है; तू अति मधुर और सांत्वनापूर्ण है। तू सब से अधिक मनोहर और प्रेममय है; तू सब से महान् है। तुझ में ही सम्पूर्ण उत्तम विषय सन्निहित हैं, रहे हैं और रहेंगे।

हे मेरे प्रियतम, यदि मुझे सचमुच मुक्ति के पंख होते तो मैं उड़कर तुझ तक पहुँच जाता और तुझ में ही आश्रय एवं विश्राम ग्रहण करता।

हे मेरे प्रभु, तू कब मुझे स्थिरचित्त होकर अपना माधुर्य देखने देगा। वह दिन कब आवेगा जब मैं पूरी तरह तेरे ही अन्दर मग्न हो जाऊँगा और प्राणों में तुझे भरकर धन्य होऊँगा?

इस दुःख की उपत्यका में अनेक छोटी-मोटी बातें मुझे व्यस्त, शोकार्त्त और मेघाच्छन्न किये रखती हैं; आकर्षित एवं व्याकुल करके मुझे तेरे पास पहुँचने नहीं देतीं फलतः मैं तेरे मिलन के मधुर आनन्द से वंचित रह जाता हूँ।

हे नित्यस्थायी महिमा की उज्ज्वलता, हे प्रियतम, मैं तेरे सम्मुख नीरव हो रहा हूँ किन्तु मेरी निस्तब्धता तेरे साथ आलाप कर रही है।

हे मेरे प्रभु, तेरे आगमन में अब क्या विलम्ब है ? मैं तेरा दरिद्र सेवक हूँ; मेरे पास आकर तू मुझे सम्पूर्ण यंत्रणाओं मे छुड़ा। तेरे विना मेरा एक-एक क्षण निरानन्द बीत रहा है क्योंकि तू ही मेरा आनन्द है और तेरे विना मेरा घर सूना है।

हे स्वामी, जबतक तुम अपने श्रीमुख के आलोक से मुझे सुख-दान न करोगे, जबतक तुम अपना हँसता मुखड़ा मुझे न दिखाओगे तबतक मैं नितान्त अभागा, बेड़ियों में जकड़ा हुआ, भाराक्रान्त जीव की तरह छटपटाता रहूँगा।

"हे वत्स, मैं यहाँ उपस्थित हूँ, मैं तेरे पास आया हूँ, क्योंकि तूने मुझे पुकारा है। तेरे नेत्र-जल, तेरी आत्मा की प्रबल आकांक्षा, तेरे विनीतभाव और तेरे अन्तःकरण के अनुताप ने मुझे खींचकर तेरे पास ला खड़ा किया है।"

हे प्रभु, मैंने तेरा आह्वान किया है और तेरे लिए सब-कुछ छोड़-कर तुझे पाने के सुख के लिए नितान्त उत्सुक हूँ पर मेरे हृदय में तुझे पाने की भावना तेरी ही कृपा से उत्पन्न हुई अतः हे प्रभु, तू धन्य है।

तेरे साक्षात् में यह दीन दास और क्या कहेगा ? स्वर्ग एवं पृथ्वी में जो-कुछ भी सत् और महत् है उसमें तेरे-जैसा कुछ नहीं है।

[१८]

तेरा स्मरण

हे प्रभु, मेरे अन्तःकरण को खोल दे और अपनी आज्ञानुसार चलने की मुझे शिक्षा दे।

आशीर्वाद दे कि मैं तेरी इच्छाओं को समझ सकूँ और सम्मान एवं यत्न के साथ तेरी सम्पूर्ण कृपा को स्मरण कर तेरा गुण-गान कर सकूँ, यद्यपि यह मैं जानता हूँ कि सामान्य भाव से भी मैं तुझे धन्यवाद देने और तेरी प्रशंसा करने में असमर्थ हूँ। जब मैं तेरे गौरव का ध्यान करता हूँ तो तेरा माहात्म्य मेरी आत्मा को अभिभूत कर देता है।

मेरी आत्मा या शरीर में, बाहर-भीतर, जो-कुछ है सब तेरा ही है।

हे नाथ, जब कोई मनुष्य तुझे प्रेम करता है तब तेरी ही इच्छा पूर्ण होती है और उसके साथ तेरी अनन्त इच्छा का जो सम्बन्ध स्थापित होता है उसमें उसे जैसा आनन्द मिलता है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता।

[१६]

शान्ति के चार नियम

"वत्स, अब मैं तुझे शान्ति और मुक्ति का मार्ग बताऊँगा।

तू अपनी इच्छा की अपेक्षा दूसरों की इच्छा का पालन करने का अभ्यास कर।

अधिक की अपेक्षा थोड़े से ही सन्तुष्ट होना सीख।

सदा छोटे स्थान की खोजकर और सबसे छोटा बन।

सदा यह इच्छा और प्रार्थना कर कि 'भगवान् की इच्छा मेरे-द्वारा पूर्ण हो।'

जो कोई इस नीति का अनुसरण करेगा वह शान्ति एवं विश्राम के प्रदेश में प्रवेश करेगा।"

हे प्रभु, मैं प्रायः तेरे मार्ग को छोड़कर भटक जाता हूँ। मुझे शक्ति दे कि इनका पालन कर सकूँ।

[२०]

कुवासना दूर करने के लिए

हे मेरे स्वामी, मुझसे दूर न हो, मेरे ऊपर कृपा कर, मेरी सहायता कर। नाना प्रकार की चिन्ता और भय ने मेरी आत्मा को पीड़ित कर रक्खा है। मैं इनके बीच से अछूता कैसे निकल सकता हूँ ? कैसे मैं इस भीति को चूर-चूर कर दूँ ?

प्रभु कहते हैं—"वत्स, मैं तेरे आगे-आगे चलता हूँ, तू मेरा अनुसरण कर। मैं कारागार के सम्पूर्ण दरवाजों को खोले देता हूँ और तेरे सामने गुप्त रहस्य को प्रकाशित करता हूँ।"

हे प्रभु, प्रत्येक दुःख के समय मैं तेरे पास भाग कर आता हूँ क्योंकि तू ही मेरा अन्तिम आश्रय है। हृदय का कोना-कोना तेरा आह्वान करता है। धीरज के साथ तेरी प्रतीक्षा करता हूँ। यही मेरी एकमात्र आशा और सान्त्वना है।

[२१]

आन्तरिक ज्योति के लिए प्रार्थना

हे दयामय, अपने सनातन उज्ज्वल आलोक से मुझे दीप्त कर और मेरे हृदय से तिमिर-राशि को हटा दे।

मेरी विपथगामिनी चिन्ताओं को संयत कर और जब भयंकर प्रलोभन मुझपर आक्रमण करें तो उन्हें चूर-चूर कर नष्ट कर दे।

तेरे पराक्रम से मुझे शान्ति मिले, और तेरे पवित्र आँगन में मैं निर्मल विवेक के सहारे तेरे गुण-गान को प्रतिध्वनित कर सकूँ, इसके लिए मेरी ओर से प्रबल युद्ध कर और हिंसक पशुओं के समान जो शारीरिक अभिलाषायें मुझे खाती जा रही हैं, उन्हें पूरी तरह दूर कर दे।

मेरे जीवन-समुद्र में जो तूफान उठ रहा है, उसे शान्त होने की आज्ञा दे तथा अपने प्रकाश और सत्य से मेरा पथ आलोकित कर। जबतक तू मुझे आलोकित न करेगा तबतक मैं आकृतिहीन कर्दम के सिवा और क्या हूँ ?

हे नाथ, ऊपर से अपने प्रसाद की वर्षा कर तथा स्वर्गीय अमृत से हमारे अन्तःकरण को सींच। पृथ्वी को सींचने के लिए नवीन भक्ति का स्रोत प्रवाहित कर जिससे वह उत्कृष्ट और उत्तम फल उत्पन्न कर सके।

हे प्रभु, पाप-राशि के भार से दबे हुए मेरे मन को ऊपर उठा और मेरी समस्त इच्छा को अपनी ओर आकर्षित कर।

मुझे अपने अभेद्य प्रेम-बन्धन में सदा के लिए बाँध ले। जो तुझे प्रेम करता है, उसे केवल तू ही तृप्त कर सकता है और उसके लिए तेरे अतिरिक्त सम्पूर्ण विषय असार एवं अनर्थकारी हैं।

[२२]

दूसरों के सम्बन्ध में अनधिकार-चर्चा

वत्स, कुतूहल में मत पड़, न व्यर्थ उद्वेग-द्वारा अपने को क्लिष्ट बना। इधर-उधर की बातों में तू क्यों पड़ता है? तू तो मेरा अनुगमन कर। वह ऐसा है, वैसा है, इससे तुझे क्या मतलब? अमुक ऐसा कहता है, वैसा कहता है, इससे तेरा क्या? दूसरों के लिए तुझे जवाब नहीं देना पड़ेगा इसलिए तू क्यों व्यर्थ दूसरों के मामलों में पड़ता है?

इसे याद रख कि मैं प्रत्येक आदमी को जानता हूँ और सूर्य के नीचे जो-कुछ हो रहा है, सब देख रहा हूँ। यही नहीं, हरएक की गुप्त बातों को—कौन किस अवस्था में है, क्या सोच रहा है, क्या इच्छा कर रहा है और किसका मन किस दिशा में दौड़ रहा है, यह सब—मैं जानता और समझता हूँ।

इसलिए अपना सर्वस्व मुझे अर्पण करके नम्रतापूर्वक शान्ति की खोज कर। किसी के महत् नाम से उद्वेलित मत हो। बहुतों से घनिष्ठता प्राप्त करने में या मनुष्य के क्षणस्थायी प्रेम के लिए यत्नवान न हो क्योंकि ये सब बातें व्याकुल और अतिशय अन्धकाराच्छन्न कर देती हैं।

यदि तू यत्नवान होकर मेरे आगमन की प्रतीक्षा करेगा और मेरे लिए अपने हृदय के कपाट खोल देगा तो मैं प्रसन्नतापूर्वक तेरे साथ प्रेमालाप करूँगा और अपनी गूढ़ बातों को तुझ से कहूँगा।

तू सतर्क हो, प्रार्थना में जाग्रत रह और प्रत्येक विषय में नम्र बन।

हृदय की शान्ति और आत्मिक उन्नति

हे वत्स, पहले कह चुका हूँ कि शान्ति मैं तेरे पास छोड़े जाता हूँ। जगत् जिस प्रकार दान करता है, उस प्रकार मैं दान नहीं करता।

संसार में सभी शान्ति पाने की इच्छा करते हैं किन्तु सच्ची शान्ति पाने के लिए यत्न कौन करता है ? मेरे द्वारा दी हुई शान्ति नम्र और धीर हृदय में ही निवास करती है। याद रख धैर्य से ही तुझे शान्ति मिलेगी।

हे प्रभु, मैं क्या करूँ ?

"तू जो कर या कह सबमें अपने प्रति तीक्ष्ण दृष्टि रख और सदा केवल मुझे ही संतुष्ट करने की चेष्टा कर और मुझसे भिन्न अन्य किसी विषय की आकांक्षा न कर।

जब तुझे कोई बोझ अनुभव न होता हो, या किसी शत्रु-द्वारा तू पीड़ित न हो या जिस समय। सब कुछ तेरी इच्छानुसार चल रहा हो, उस समय मैं निरापद हूँ या शान्ति भोग कर रहा हूँ, ऐसा मन में न सोच। अपनी अचल भक्ति एवं सुख पर न फूल। ऐसा न सोच कि सर्वोच्च सत्य इन सब बातों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

हे प्रभु, तब कैसे मेरा उद्धार होगा ?

हृदय से ईश्वरीय इच्छा पर अपने को अर्पण करने से ही यह हो सकता है। उन्नति–अवनति, सुख-दुःख दोनों अवस्थाओं में समभाव रखकर ईश्वर का धन्यवाद कर और जब आन्तरिक सान्त्वना का प्रकाश तेरे हृदय में फैले तो उस समय हृदय को तू और भी कठोर दुःखों का भार उठाने को तैयार रख। इससे तू सत्य एवं यथार्थ शान्ति का मार्ग खोजने में सफल होगा।

सर्वस्वार्पण

वत्स, दूसरों के लिए तुझे अपना सर्वस्व दान करना आवश्यक है। तू याद रख कि तेरा अपना कुछ नहीं है। जगत् के अन्य सब विषयों की अपेक्षा आत्म-प्रेम ही तेरी उन्नति में अधिक बाधक है। जिस विषय में तेरी जितनी प्रीति एवं आसक्ति है उस विषय में तुझे उतना ही कष्ट भोगना पड़ेगा। यदि तेरा प्रेम पवित्र, सरल और संयत है तो तू सभी बातों में स्वतन्त्र रहेगा। तू जिस चीज को प्राप्त नहीं कर सकता अथवा जिसे प्राप्त करना तेरे लिए अवैध है, उसकी आकांक्षा न कर। जो वस्तुएँ तेरी आत्मिक उन्नति में बाधक हों, उनका त्याग कर।

तू अपने को अपनी सम्पूर्ण कामनाओं के साथ मुझे अर्पण नहीं करता, यह आश्चर्य की बात है। व्यथा से तू क्यों व्यथित है? व्यर्थ चिन्ताओं का बोझ तूने अपने सिर उठा रक्खा है? तू सब-कुछ मुझ पर छोड़ दे, इसी से तेरा मंगल होगा। यदि तू अपने स्वार्थ के लिए कभी इसकी, कभी उसकी कामना करेगा; कभी यहाँ, कभी वहाँ रहना चाहेगा, तो, कभी तुझे शान्ति न मिलेगी क्योंकि प्रत्येक वस्तु में कुछ न कुछ कमी होती ही है। इसीलिए बाह्य पदार्थों की प्राप्ति या वृद्धि-द्वारा मनुष्य का मंगल होता हो, ऐसी बात नहीं है वरन् प्रायः अन्तःकरण से उसके महत्त्व का उन्मूलन कर देने से ही कल्याण होता है। अवसर आने पर मालूम होगा कि जिससे तू भागना चाहता है उसी ने तुझ को कैसे दृढ़ बन्धन में जकड़ रक्खा है।

[२५]

निन्दा-यश की असारता

वत्स, यदि कोई तेरी निन्दा करता है या तेरे विषय में ऐसी बातें कहता है जिसे तू सुनना नहीं चाहता तो तू दुखित न हो और उससे बुरा न मान। तू अपने को सबसे दुर्बल समझ, किसी को अपने से नीचे न मान। यदि तू अपनी आत्मा की पुकार पर चल रहा है तो दूसरों की अतिरंजित बातों को महत्व न दे। दुःसमय को चुपचाप सहन कर तथा मुझमें दृष्टि स्थिर रखते हुए, मनुष्यों की अनुकूल-प्रतिकूल आलोचना से व्याकुल न होकर अपना काम कर।

मनुष्यों के मुँह में तेरी शान्ति क्यों बँधी रहे ? उनके निन्दा-यश पर तेरी शान्ति क्यों निर्भर करे ? वे अच्छा कहें या बुरा, इससे तू दूसरा आदमी तो बन न जायगा; तू जो है, वही रहेगा। इसलिए विचार कर कि सच्ची शान्ति एवं विभूति का स्रोत कहाँ है ? क्या मैं नहीं ?

जो मनुष्य को प्रसन्न करने की आकांक्षा नहीं रखता, न उसके असंतोष से भयभीत होता है, वही यथेष्ट शान्ति पाता है।

अवैध प्रेम और असार भय से ही हृदय की अशान्ति और बौद्धिक प्रमाद का जन्म होता है।

[२६]

भगवत्करुणा की भिक्षा

हे वत्स, मैं ही दुःख में तेरा विश्राम हूँ । दुःसमय में तू मेरी शरण में आ। मैं ही हूँ जो शरणागतों का उद्धार करता हूँ। मुझ से भिन्न स्थायी मंगल की प्राप्ति नहीं हो सकती । मेरे लिए कुछ असम्भव नहीं ।

प्रार्थना में शिथिलता आन्तरिक सान्त्वना के माग में सब से बड़ी बाधा है । तेरा विश्वास कहाँ है ? दृढ़ और स्थिरचित्त होकर खड़ा हो; साहस एवं धैर्य का अवलम्बन कर; उपयुक्त समय में तुझे सान्त्वना मिलेगी । मेरी प्रतीक्षा कर, मैं वचन देता हूँ कि मैं आऊँगा और तेरी रक्षा करूँगा। जो-कुछ तुझे व्याकुल कर रहा है वह तो एक मामूली परीक्षा है; व्यर्थ भय से तू काँप रहा है । भावी घटनाओं के सम्बन्ध में अधिक चिन्ता करके तू दुःख पर दुःख का भार बढ़ाता जाता है ।

किन्तु इस प्रकार की कल्पना से भ्रान्त होना मनुष्य का स्वभाव है और पापी पुरुषों की कुमंत्रणा से सहज ही आकृष्ट होना दुर्बल मन का चिन्ह है । इसलिए तू अपने अन्तःकरण को कभी उद्विग्न अथवा भीत न होने दे और मुझ पर निर्भर कर ।

तू कितनी ही बार मुझे दूर समझता है, किन्तु मैं तो सब वस्तुओं की अपेक्षा तेरे निकट रहता हूँ । बात यह है कि कोई प्रतिकूल घटना घटते ही तेरा सम्पूर्ण विश्वास उड़ जाता है किन्तु याद रख कि मन के उपस्थित भावों के

अनुसार मान लेना किसी प्रकार उचित नहीं है। यदि थोड़ी देर के लिए मैं तुझे दुःखों में डालता हूँ या तेरी वांछनीय सान्त्वना तुझ से छीन लेता हूँ तो यह न सोच कि तू सब प्रकार से परित्यक्त है। स्वर्ग-राज्य का रास्ता ही यह है।

मैं तेरे हृदय की सम्पूर्ण गुप्त चिन्ताओं को जानता हूँ। अपने विषय में जो चिन्ता तुझे न करनी चाहिए, उसका तेरे मन में उदय होने के कारण ही कभी-कभी तू आत्मिक माधुर्य के रसास्वाद से हीन हो जाता है; पर इसमें भी तेरा मंगल छिपा है।

मैंने जो-कुछ तुझे दिया है, उसे लौटा लेना या फिर दान करना मेरी ही इच्छा के अधीन है। जब मैं तुझे दान करता हूँ तो अपनी ही चीज़ देता हूँ; जब मैं लौटा लेता हूँ तो तेरी चीज़ नहीं लेता।

हे वत्स, यदि मैं तुझे दुःखों में डालता हूँ तो इसके लिए शोक न कर, न अपने हृदय को हताश होने दे क्योंकि मैं आगे इन्हीं को तेरे अनुकूल बनाकर तेरे समस्त उद्वेग को आनन्द में परिणत कर सकता हूँ। जब मैं तेरे साथ ऐसा व्यवहार करता हूँ तब भी मैं पहले का वही एकमात्र 'सत्' रहता हूँ।

यदि तू प्रकृत ज्ञानी है एवं सत्य क्या है, इसे समझता है तो दुःख के समय शोक करने की अपेक्षा तेरा हृदय आनन्द एवं कृतज्ञता से भर जायगा। तुझ पर समय-समय पर जो दुःख आते हैं, उन्हें अपना सौभाग्य समझ।

मन की अस्थिरता और ईश्वर-प्राप्ति का संकल्प

वत्स, अपने अन्तःकरण में उपस्थित भावों के ऊपर निर्भर न कर क्योंकि वे शीघ्र ही बदल सकते हैं। जब तक तू जीवित रहेगा, भले ही अनिच्छा से हो, तुझे परिवर्तन के नियम के अधीन रहना ही पड़ेगा। इसीलिए तू कभी आनन्दित कभी दुःखित, कभी निश्चिन्त कभी व्याकुल, कभी धर्मरत कभी धर्म-विरत, कभी परिश्रमी कभी आलसी, कभी गम्भीर और कभी चंचल हो जाता है।

किन्तु ज्ञानी एवं आत्म-योगी इस परिवर्तन के ऊपर अपने को दृढ़ रूप से स्थापित करके वायुरूप चंचल मन की भावनाओं को खींचकर यथार्थ और सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य में ही लगाते हैं। ऐसा होने पर परिवर्तनशील सांसारिक घटनाओं के बीच उनकी स्थिर दृष्टि सदा मुझमें ही लगी रहती है और वे अटल, अविकृत और शांत भाव से समय बिताते हैं।

संकल्प की आंख जितनी ही निर्मल और पवित्र होती है, आदमी दुर्घटनाओं के तूफ़ान के बीच उतनी ही दृढ़ता से आत्मिक जीवन की रक्षा कर सकता है। कितने ही संकल्प की पवित्र दृष्टि-शक्ति को धुँधला कर देते हैं क्योंकि कोई क्षणिक सुख देने वाली वस्तु देखते ही वे उधर शीघ्र आकृष्ट हो जाते हैं। स्वार्थ-चेष्टा के दोष से पूर्णतः मुक्त लोग दुनिया में बहुत थोड़े हैं।

इसलिए तुझे अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों एवं घटनाओं के बीच केवल ईश्वर की ओर ही दृष्टि रखनी चाहिए।

[२८]

ईश्वर का अपूर्व माधुर्य

हे मेरे ईश्वर, मेरे सर्वस्व, मैं तेरे सिवा और किस की इच्छा करूँ? और किस अधिक सुख की आकांक्षा करूँ?

हे नाथ, तेरे साथ रहने से सब कुछ आनन्दमय हो जाता है, और तेरे विरह में सभी वस्तुयें दुःखकर हो जाती हैं। तू ही मेरे अन्तःकरण की स्थिरता है, तू ही मेरी महती शान्ति है। तेरे सिवा और किसी वस्तु से अधिक समय तक संतोष नहीं मिल सकता और तेरी कृपा बिना कोई वस्तु आनन्द-दायक एवं सुस्वादु नहीं हो सकती।

जिसने तेरी मधुरता का असली स्वाद पा लिया है, उसके लिए सब कुछ मधुमय है। जिसे तेरी मधुरता का स्वाद नहीं मिला उसे किसी वस्तु से संतोष नहीं होता।

जो सांसारिक विषयों की अवज्ञा एवं इन्द्रिय-दमन द्वारा तेरा अनुगमन करते हैं वे ही सद्ज्ञान लाभ करते हैं क्योंकि वे असारता से सत्य और शारीरिकता से आत्मिकता की ओर उठते हैं।

स्रष्टा और सृष्टि के माधुर्य-भोग में, अनन्त और सान्त में, तथा ईश्वरप्रदत्त एवं कृत्रिम आलोक में बड़ा अन्तर है।

"हे सम्पूर्ण सृष्ट ज्योतियों से अतीत, नित्य आलोक, तू ऊपर से अपनी प्रकाश-किरणों की वर्षा कर जिससे मेरे हृदय के भीतर का समस्त प्रदेश आलोकित हो जाय। हे नाथ, मेरी आत्मा और उसकी सम्पूर्ण क्षमता को पवित्र, उल्लसित दीप्तिमय और जीवन्त कर जिससे मैं विशुद्ध आनन्द में तुझ में ही आसक्त और निमग्न हो जाऊँ।

अहा, जिस समय तू मेरे पास रहकर तुझे तृप्त करते हुए मेरा सर्वस्व और सर्वेसर्वा हो जायगा वह चिरवांछित समय कब आवेगा ?

जबतक मुझ पर यह अनुग्रह नहीं होता, तबतक पूर्ण आनन्द प्राप्त करना मेरे लिए असंभव है।

हाय, अबतक वे पुरानी कुवासनायें मेरे अन्दर जीवित हैं, पूर्ण रूप से उनका नाश नहीं हुआ। अब भी वे बलवती होकर आत्मा के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया करती हैं और आन्तरिक शान्ति को क्षुब्ध कर देती हैं।

हे प्रभु, तू मुझे आश्रय दे। तू अपनी आश्चर्य-क्षमता प्रकाशित कर और अपने वरद हस्त को गौरवान्वित होने दे क्योंकि हे नाथ, हे मेरे ईश्वर, तेरे सिवा मेरी और कोई आशा या आश्रय नहीं है।

[२६]

मानवी निर्णय की असारता

वत्स, तू मुझमें अपने मन को दृढ़ रूप से नियोजित कर और जब तेरा अन्तःकरण तुझे निर्दोष और पवित्र कहता हो तो किसी मनुष्य के निर्णय का भय न कर। इस प्रकार कष्ट सहन करना मनुष्य के लिए गौरवपूर्ण है और हार्दिक नम्रता के साथ मुझमें विश्वास रखते हुए जो इसे सहन करेगा उसकी कोई हानि न होगी।

बहुत तरह के आदमी बहुत तरह की बातें कहते हैं और उनपर बहुत ही कम विश्वास किया जा सकता है। सबको प्रसन्न रखना सम्भव नहीं है। संसार में कई महापुरुष ऐसे हुए हैं जो सब के सुख का ध्यान रखते थे फिर भी कितनी ही बार उनका तिरस्कार किया गया। इसीलिए उन्होंने सब कुछ भगवत्चरणों में अर्पण कर दिया और धैर्य एवं नम्रता के साथ दूसरों की निन्दा के प्रहारों को सहते रहे। फिर तू ऐसे मनुष्य की निन्दा से क्यों डरता है जो आज है, कल न रहेगा। तू तो केवल मेरा ध्यान रख और मानवी भय से भयभीत न हो। यदि तू सच्चा है तो दूसरे लोग शब्दों एवं कार्यों से तेरी क्या हानि कर सकते हैं; इसमें उन्हीं की

हानि है। वे कोई हों, अपने को, अपनी दुर्बलता को जानते हैं। तू तो केवल मुझे, अपने ईश्वर को, अपनी आँखों के सामने रख और उग्र शब्दों—जोर-से कभी किसी के साथ विवाद न कर।

यदि इतने पर भी किसी समय तुझे अप्रतिभ या शर्मिन्दा होना पड़े तो तू दुखित न हो और धीरज छोड़कर अपने गौरव-मुकुट को मलिन न बना। वरन् सब प्रकार के दुखों से उद्धार पाने के लिए केवल मुझ में अपनी आशान्वित दृष्टि को स्थिर कर क्योंकि मैं ही सबको कर्मों एवं भावों के अनुसार फल देता हूँ।

[३०]

विशुद्ध आत्म-विसर्जन

वत्स, आत्म-विसर्जन कर; इसी से तू मुझे पायेगा ।

हे प्रभु, मुझे कितनी बार एवं किन विषयों में आत्म-त्याग करना होगा ?

वत्स, सदा सब विषयों में त्याग स्वीकार कर; तू सदा सब बातों में स्वार्थरहित हो, यही मेरी अभिलाषा है । यदि अन्दर-बाहर दोनों से तू अपनी इच्छाओं का विसर्जन करेगा तभी तू मेरा होगा और मैं तेरा हो सकूँगा ।

जितनी जल्द तू इसका साधन करेगा उतना ही तेरा मंगल होगा और जितनी ही पूर्णता एवं सरलता से तू इसे सम्पादन करेगा उतना ही अधिक मुझे संतुष्ट कर सकेगा ।

कोई-कोई आँशिक भाव से आत्म-त्याग करते हैं, मुझ पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर न करके द्विविधा में पड़े रहते हैं । कोई-कोई आरंभ में पूर्ण आत्म-विसर्जन करते हैं किन्तु कठिनाइयों से ऊबकर फिर पहले मार्ग पर आ जाते हैं ।

पूर्ण रूप से आत्म-विसर्जन किये बिना किसी को भी अन्तःकरण-प्रसूत निर्मल सत्य अथवा मेरे प्रेम का मधुर प्रसाद नहीं मिल सकता और ऐसा हुए बिना मेरे साथ कोई स्थायी फलदायक सम्मिलन भी संभव नहीं है ।

मैं पहले कई बार कह चुका हूँ और फिर कहता हूँ—"आत्म-त्याग के बिना कभी आन्तरिक शान्ति नहीं मिल सकती इसलिए हे वत्स, तू पूरी तरह से आत्म-विसर्जन कर; कोई कामना न कर, बदले में कुछ पाने की इच्छा न कर। श्रद्धा एवं विश्वास के साथ मुझमें ही अपने को नियोजित कर। इसीमे तू अम्पूर्ण असार वासनाओं, अकारण दुर्भावनाओं एवं अनर्थकारी चिन्ताओं के ऊपर उठ जायगा और सभी ही तू मुझे पा सकेगा।

[३१]

यश के प्रति अवज्ञा

वत्स, दूसरों के यश और उन्नति तथा अपनी निन्दा से क्षुब्ध न हो। अपना मन ऊपर, मेरी ओर, उठा; इससे संसार में मनुष्यों की अवज्ञा तुझे क्षुब्ध न कर सकेगी।

हे प्रभु, हम स्वयं ही अन्धकार में पड़े रहते हैं; हम में से बहुतेरे अहंकार द्वारा धोका खाते हैं। जब मैं भलीभाँति अपने मन की परीक्षा करता हूँ तो यही कहना पड़ता है कि किसी और जीव ने मेरे साथ कोई अन्याय नहीं किया है। लज्जा और अवज्ञा जो मुझे भोगनी पड़ती है, मेरे ही कर्मों का फल है और यश एवं महिमा सब तेरी कृपा के फल हैं और उन पर तेरा ही अधिकार है।

नाथ, यदि मैंने अपने मन को मनुष्यों की अवज्ञा सहने, उनके द्वारा परित्यक्त होने तथा तुच्छ समझे जाने के लिए तैयार नहीं कर लिया है तो मैं आन्तरिक शांति एवं स्थिरता पाने अथवा अपनी आत्मा को दीप्तिमय बनाने में समर्थ न हो सकूँगा, न तुझ तक पहुँच सकूँगा।

मनुष्य-प्रदत्त शांति की असारता

वत्स, इसे भली-भाँति समझ ले कि चाहे कोई मनुष्य तेरे कितना ही मनोनुकूल एवं घनिष्ट हो, अपने शांति-लाभ के लिए उसके ऊपर निर्भर करना बिलकुल अविधेय है क्योंकि ऐसा होने पर तू शीघ्र ही विचलित होकर संसार के माया-जाल में फँस जायगा।

किन्तु यदि तू मुझे चिरस्थायी सत्य मानकर मेरा ही आश्रय लेगा तो इससे किसी प्रेमी, मित्र या बंधु के वियोग या मृत्यु के कारण तुझे दुःख न भोगना पड़ेगा।

अपने मित्र के प्रति जो तेरा अनुराग है उसे मुझमें ही केंद्रीभूत कर और चाहे जिसे भी तू सच्चा और प्रिय मान,पर उसे मेरे ही लिए प्रेम कर। मुझसे भिन्न मित्रता में कोई शक्ति या स्थायित्व नहीं है। और जो मेरे द्वारा संयोजित नहीं है वह प्रेम-योग्य, सत् एवं निर्मल नहीं है।

यदि तू अपने को नगण्य समझकर, सब प्रकार के पार्थिव प्रेम से अलग हो जायगा तो मैं तेरे अन्तःकरण में अपना अनुग्रह-स्रोत प्रवाहित करूँगा।

जब तू सृष्टि के जीवों की ओर देखता है तो स्रष्टा का मुख तेरी आँखों की ओट हो जाता है।

सामान्य विषयों में अवैध अनुराग का त्याग कर क्योंकि वे परमार्थ-साधन में विघ्न-रूप हैं और आत्मा में अपवित्र भावों का समावेश करते हैं।

[३२]

पार्थिव ज्ञान की असारता

वत्स, मनुष्यों के वाक्चातुर्य पर मुग्ध न हो । ईश्वर का राज्य बातों से नहीं पराक्रम से ही फैलता है। मेरी बातों पर ध्यान दे; वे हृदय और मन को प्रदीप्त करेंगी तथा तुझे सच्ची सान्त्वना प्रदान करेंगी ।

अधिक विद्वान् दिखने के लिए अध्ययन मत कर वरन् अन्तः-करण की पवित्रता बढ़ाने के लिए धर्मग्रन्थों का अध्य-यन कर ।

मैं ही मनुष्यों को प्रकृतज्ञान की शिक्षा देता हूँ और मनुष्य-द्वारा जो ज्ञान नहीं मिल सकता, उसे मैं अपने बच्चों को देता हूँ । जिसे मैं ज्ञान देता हूँ वह तुरन्त ज्ञानी और महात्मा हो जाता है और जो केवल मानवी ज्ञान के लिए व्याकुल होता है वह भ्रम में पड़कर दुःख भोगता है ।

दस साल विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके भी सत्य के विषय में जो ज्ञान प्राप्त नहीं होता वह मैं अपने भक्तों को एक मुहूर्त्त में हृदयंगम करा देता हूँ ।

सम्पूर्ण पार्थिव विषयों को तुच्छ समझने, नित्यस्थायी वस्तुओं का अन्वेषण और आस्वादन करने, यश से दूर भागने,

अपमान सहन करने, अपनी सम्पूर्ण आशा मुझमें ही स्थापित करने, मेरे सिवा किसी और की इच्छा न करने और सब को छोड़कर केवल मेरी शरण में आने की शिक्षा मैं अपने भक्तों को देता हूँ।

मैं अनेक रूपों में ज्ञान देता हूँ। किसी से साधारण किसी से विशेष रूप से आलाप करता हूँ; किसी के निकट अपने को प्रतीक-द्वारा धीरे-धीरे और किसी के हृदय में स्पष्टरूप में मैं अपने सम्पूर्ण निगूढ़ रहस्यों को प्रकाशित करता हूँ।

पुस्तक तो एक ही होती है पर वह सब मनुष्यों को एक ही प्रकार शिक्षा नहीं देती; मैं ही सत्य का प्रकृत शिक्षक हूँ; हृदय में द्रष्टा हूँ; बुद्धि में अनुसंधानकारी हूँ; चिन्ता में विचारक हूँ और कार्य में कर्ता एवं सहायक हूँ। मैं जिसे जैसा समझता हूँ उसे वैसा ही ज्ञान देता हूँ।

[३४)

निन्दा-सहन में ईश्वर पर निर्भरता

वत्स, तू दृढ़तापूर्वक खड़ा हो, हर हालत में मुझपर निर्भर कर क्योंकि निन्दा के व्यर्थ वाक्य तेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। शब्द शब्द ही हैं; वे वायु में उड़ जाते हैं, पर पत्थर (के समान अटल हृदय) को घायल नहीं कर पाते।

वत्स, यदि तू दोषी हो तो आत्म-संशोधन का यत्न कर और यदि दोषी न हो तो भगवान् के लिए प्रसन्नचित्त से लोगों की निन्दा सहन कर।

तू कठिन प्रहार सहन करने के लिए अभी तक प्रस्तुत नहीं है सुतरां बीच-बीच में कुछ वाक्य-मंत्रणा सहन करके ज्ञानार्जन करना तेरा कर्त्तव्य है। तू अब भी संसार में आसक्त है और मानवी प्रशंसा अब भी तेरे हृदय को अच्छी लगती है। अपमानित होने के भय से तू अपने दोषों को स्वीकार करने का साहस नहीं दिखाता या उनकी सफाई देने की चेष्टा करता है।

पर यदि तू भलीभांति अपनी परीक्षा करेगा तो तुझे मालूम होगा कि तुझमें जगत् एवं मनुष्य को सन्तुष्ट करने की असार वासना अब भी जीवित है।

जब तू तुच्छ समझे जाने या अपने दोष के लिए अपमानित होने

के भय से अपने को छिपाता है तब स्पष्ट ही जाना जा सकता है कि तुझमें सच्ची नम्रता नहीं आई है, न जगत् के प्रति तू पूर्णतः अनासक्त है।

वत्स, तू सावधानी के साथ मेरे आदेशों का अनुसरण कर; इससे तू मनुष्य के हजारों निन्दा-वाक्यों से भी विचलित न होगा। तेरे विरुद्ध जितनी कटु बातें कही जाती हों, तू उनकी ओर ध्यान न दे और उन्हें धूलिवत् समझ। इससे सारी निन्दा मिलकर भी तेरा एक बाल बाँका न कर सकेगी।

किन्तु जिसका आध्यात्मिक जीवन पुष्ट नहीं है, जिसे ईश्वर दिखाई नहीं देता वह व्यक्ति निन्दा की साधारण बात से भी सहज ही क्षुब्ध हो जाता है। जो पूरी तरह मुझपर ही निर्भर करते हैं वे सम्पूर्ण भय से मुक्त हो जाते हैं।

मैं ही न्यायी विचारक हूँ; मैं सबके हृदय के गुप्त तत्त्वों का विचार करता हूँ; मुझे निन्दा के सब गुप्त स्रोत मालूम हैं। जो निन्दा—हानि—करता है। उसे मैं जानता हूँ और जो सहन करते हैं उन्हें भी मैं जानता हूँ।

मुझ से ही उन सब वाक्यों का जन्म होता है जो मनुष्य के अन्तःकरण की गुप्त चिन्ता को प्रकाशित करते हैं। यह सब मेरी ही अनुमति के अनुसार घटित होता है। मैं दोषी और निर्दोष का विचार करूँगा किन्तु गुप्त विचार-द्वारा पहले दोनों को अपनी परीक्षा करने का अवसर मैं देता हूँ।

मनुष्य के साक्ष्य से प्रायः भ्रम पैदा हो जाता है किन्तु मेरा निर्णय सच्चा और न्यायपूर्ण होता है, स्थिर रहता है और कभी नष्ट नहीं होता।

मेरा विचार सबके लिए गुप्त और रहस्यपूर्ण है; बहुत थोड़े लोगों को विशेष अवसरों पर थोड़ा-बहुत उसका पता लगता है।

जो सच्चे आत्म-ज्ञानी हैं, जिन्होंने मुझे पूर्णतः आत्मार्पण कर दिया है वे प्रत्येक बात में ईश्वर की इच्छा देखते हैं, इसलिए व्याकुल नहीं होते। यदि उन पर किसी झूठे दोष का आरोप कभी किया जाता है तो भी वे उधर ध्यान नहीं देते। यदि प्रमाण से निर्दोषता सिद्ध हो जाय तो भी वे उल्लसित नहीं होते।

मैं कभी बाहरी दृष्टि से, बाहरी बातों को लेकर, विचार नहीं करता, लोगों के हृदय को देखता हूँ। इसीलिए मनुष्य के विचार से जो प्रशंसनीय गिना जाता है वह अनेक बार मेरी दृष्टि से निन्दनीय होता है।

"हे प्रभु, हे मेरे स्वामी, तू ही सच्चा विचारक है। तू मनुष्यों की दुर्बलता और दुष्टता को जानता है। तू ही मेरा बल है, तू ही मेरी आशा है।

जो-कुछ मैं नहीं जानता, वह तुझे मालूम है इसलिए निन्दित होने पर भी शान्तिपूर्वक मुझे जीवन बिताना उचित है।

हे नाथ, इस सम्बन्ध में यदि मुझसे कुछ अन्यथा व्यवहार हुआ हो तो दया करके उसे तू क्षमा कर और आगे आनेवाली परीक्षाओं में अविचलित रह सकूँ, ऐसी शक्ति मुझे प्रदान कर।"

३५]
अनन्त जीवन के लिए कष्ट-सहन

वत्स, तूने मेरे लिए जो श्रम अङ्गीकार किया है, उसमें थक कर मत बैठ। देख, दुःख-कष्ट कहीं तुझे नीचे न गिरा दें। यदि तू ध्यान रक्खेगा तो मेरी प्रतिज्ञा हर हालत में तुझे शक्ति और सान्त्वना प्रदान करेगी। मैं तुझे परिमाणातीत पुरस्कार प्रदान कर सकता हूँ। तुझे अधिक दिन तक कष्ट और दुःख का भार नहीं उठाना पड़ेगा। धीरज रख और प्रतीक्षा कर। शीघ्र ही तेरे समस्त दुःखों का नाश हो जायगा।

एक समय ऐसा आवेगा जब सारे दुःख-कष्ट और अशान्ति का अन्त हो जायगा। उसमें थोड़ा ही विलम्ब है, समय-चक्र घूमते क्या देर लगती है?

मेरे द्राक्षा-उपवन में तू जो परिश्रम कर रहा है उसे उद्योगपूर्वक करता जा। तेरे परिश्रम का पुरस्कार मैं स्वयं हूँ।

तू लिख, पढ़, गा, शोक कर, नीरव रह, प्रार्थना कर तथा आपदाओं को वीर की तरह सहन कर। अनन्त जीवन इन सब युद्धों वरन् इनसे भी घोरतर युद्धों-द्वारा ही प्राप्त होता है।

मैं जानता हूँ, एक दिन तुझे शान्ति मिलेगी। उस समय न दिन रहेगा, न रात। केवल अनन्त प्रकाश, असीम उज्ज्वलता, स्थायी शान्ति और चिर-विश्राम ही रह जायगा। उस समय तुझे यह कहने की आवश्यकता न पड़ेगी कि "इस नश्वर शरीर से मेरा उद्धार कौन करेगा?" मृत्यु दूर जा गिरेगी, जरा-मरण-हीन स्वास्थ्य प्राप्त होगा, कोई चिन्ता नहीं होगी और सब आनन्दमय हो जायगा।

[३६]

अनन्त जीवन के लिए व्याकुलता

अहा, उस उच्च नगरी में रहना कितना आनन्ददायक है। अहा, अमरता का वह उज्ज्वल दिन, जिसे कोई रात अन्धकारमय नहीं बनाती और जहाँ सर्वोच्च सत्य सदा प्रकाशमान है, सब-कुछ आनन्दमय, स्थिर और कभी (विरुद्ध दिशा में) बदलने वाला नहीं है। वह दिन यदि एक बार हमारे सामने प्रकाशित हो जाता तो समस्त पार्थिव विषयों का वहीं अन्त हो जाता।

हाय, हमारे जीवन में जो बुराइयाँ आ गई हैं उनका अन्त कब होगा? कब मैं पाप की कष्टकर गुलामी से उद्धार पाऊँगा? हे प्रभु, कब मैं केवल तुझमें ही मन लगाऊँगा? कब मैं तुझमें निमग्न होकर आनन्दमय हो जाऊँगा? कब पूर्ण मुक्ति के मार्ग की सारी बाधायें चकनाचूर हो जायँगी और शरीर एवं आत्मा के सारे दोष दूर हो जायँगे। कब मैं अचञ्चल शान्ति, निरापद एवं निश्चित शान्ति, भीतर-बाहर की शान्ति—चारों ओर से अक्षुण्ण रहने वाली शान्ति पाऊँगा।

हे प्रभु, कब मैं तेरा प्रत्यक्ष दर्शन करूँगा ? हे राजा, कब मैं तेरे स्वर्गीय राज्य की विभूतियों को देख पाऊँगा ? कब मैं तेरे पास रहकर तेरे राज्य का माधुर्य पान कर सकूँगा, जिसे तू अपने प्रेमियों को सदा से पिलाता आया है। मैं दीन-हीन, शत्रुओं के देश में पड़ गया हूँ जहाँ नित्य युद्ध और दुर्दैव से सामना करना पड़ता है। हे स्वामी, तू मुझे इस अवस्था में सान्त्वना दे, हमारे दुःख को कम कर। मेरे प्राण की नस-नस में तुझे पाने की उत्कण्ठा भरी हुई है। मैं संसार की सान्त्वना नहीं चाहता, दुनिया जो कुछ मुझे दे सकती है, वह तो मुझे एक बोझ लगता है।

मैं हृदय के गम्भीर प्रदेश में तेरा संभोग करना चाहता हूँ किन्तु मैं तुझे पकड़ नहीं पाता। स्वर्गीय विषयों में लीन होने की मेरी बड़ी इच्छा है पर शारीरिक इच्छायें एवं अदम्य वासनायें मुझे सर्वदा दुर्बल एवं भारग्रस्त बना देती हैं। मैं मन में सम्पूर्ण अनित्य विषयों के ऊपर उठने का संकल्प करता हूँ पर भरसक चेष्टा करने पर भी गिर पड़ता हूँ। मैं अभागा अपने साथ ही युद्ध करता हूँ और अपने ही लिए कष्ट-दायक हो उठता हूँ। मेरी आत्मा तो ऊँचे—बहुत ऊँचे जाना चाहती है पर मेरा शरीर नीचे ही रहने की चेष्टा करता है। हाय, जब मैं दिव्य एवं चिरस्थायी विषयों का विचार करता हूँ और अपने को इतना दुर्बल और पतित पाता हूँ तो हृदय में कैसी व्यथा होती है !

हे मेरे ईश्वर, तू मुझ से दूर न हो और मेरी ग़लतियों के कारण मुझे परित्याग न कर। हे नाथ, अपना वज्र गिरा कर उन्हें

छिन्न-भिन्न कर; अपना बाण चलाकर मेरे अन्तःशत्रुओं की कल्पना को व्यर्थ कर दे।

हे दयामय, मेरी समस्त इन्द्रियों को संयत करके उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर। जगत् के सम्पूर्ण विषयों को मेरे मनसे विस्मृत होने दे और मैं शीघ्र सम्पूर्ण पापपूर्ण अभिलाषाओं का त्याग कर सकूँ, ऐसी शक्ति मुझे दे।

हे नित्यस्थायी सत्य, मेरी सहायता कर जिससे नाना प्रकार के अहंभाव मुझे विचलित न कर सकें। हे स्वर्गीय माधुर्य, मेरे पास आकर प्रकाशित हो और अपने श्रीमुख के प्रकाश एवं सौन्दर्य से मेरी सम्पूर्ण अपवित्रता दूर कर दे।

हे नाथ, हमें क्षमा कर और जब प्रार्थना के समय तेरे सिवा और कोई चिन्ता मेरे हृदय में आवे तो मेरे साथ क्षमा का व्यवहार कर और मुझे धीरज दे। मैं सचमुच ही अनेक चिन्ताओं से कातर हो उठता हूँ। अनेक बार जहाँ मेरा शरीर रहता है, वहाँ मेरा मन नहीं रहता, वह अन्य स्थानों पर दौड़ता रहता है। जहाँ मेरे विचार रहते हैं, मैं भी वहीं रहता हूँ और मेरी प्रवृत्ति जिस रास्ते पर दौड़ती है, मेरे विचार भी उसी रास्ते पर दौड़ते हैं। जो बात सुख देती है या अभ्यास के कारण मुझे संतुष्ट करती है, वह जल्द मेरे मन में आ जाती है। इसीलिए हे सत्य-स्वरूप, तू ने स्पष्ट ही कहा है—"जहाँ तेरा धन है, वहीं तेरा मन है।"

यदि मैं स्वर्ग को चाहता हूँ तो स्वर्गीय वस्तुओं पर विचार करने में मुझे प्रसन्नता होती है। यदि मैं दुनिया को चाहता हूँ तो

दुनिया के सुखों में सुखी होता—भूल जाता—हूँ और उसके दुःखों में दुःखी होता हूँ। यदि मैं शरीर को प्यार करता हूँ तो प्रायः उन्हीं विषयों की चिन्ता करता हूँ जो शरीर से सम्बन्ध रखती हैं। यदि मैं आत्मा को प्यार करता हूँ तो आध्यात्मिक वस्तुओं के बारे में विचार करने में एक प्रकार का आह्लाद होता है। जिस चीज को मैं प्यार करता हूँ उसी के बारे में बोलने और सुनने की इच्छा करता हूँ और उसी की चिन्ता मेरे हृदय में निवास करती है।

किन्तु हे प्रभु, धन्य है वह मनुष्य जो तेरे लिए सम्पूर्ण जगत् से अनासक्त हो जाता है, अपने स्वभाव को संयत रखता है और आत्म-शक्ति से सम्पूर्ण शारीरिक अभिलाषाओं को विजय कर लेता है। ऐसी अवस्था में ही वह स्थिरचित्त होकर तेरे उद्देश्य में अपनी बलि चढ़ाता हैं और अन्तर-बाह्य सब को सकल कामनाओं से रहित करके तुझ में ही स्थित हो जाता है।

[३७]

आत्मार्पण

वत्स, जिस सीमा तक कोई आत्म-त्याग करेगा, उस सीमा तक मुझे प्राप्त होगा।

जैसे बाह्य विषयों में कामना-शून्य हो जाने पर आन्तरिक शान्ति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार हृदय से त्याग करने पर तू मुझे प्राप्त करेगा। मेरा आदेश है कि तू तर्क और विवाद का त्याग करके मेरी इच्छा के अधीन रह कर पूर्णतया मुझे आत्मार्पण कर।

वत्स, मेरा अनुगमन कर क्योंकि मैं ही मार्ग, सत्य और जीवन हूँ। याद रख, मनुष्य मार्ग के विना ठीक स्थान पर पहुँच नहीं सकता, सत्य के विना जान नहीं सकता और जीवन के बिना जी नहीं सकता।

मैं ही मार्ग हूँ, मेरा अनुगमन कर। मैं ही सत्य हूँ, मुझ में श्रद्धा कर। मैं ही जीवन हूँ, मुझ में अपनी सम्पूर्ण आशाओं को नियोजित कर। मैं अभ्रान्त पथ हूँ, मैं अमिट सत्य हूँ, मैं अनन्त जीवन हूँ। मैं ही सब से सरल पथ हूँ, मैं ही सर्वोच्च सत्य हूँ और मैं ही प्रकृत, आनन्दमय और असृष्ट जीवन हूँ।

यदि तू मेरे मार्ग से चलेगा तो उसके द्वारा तू सत्य को जान सकेगा और सत्य तुझे मुक्त करेगा और तू अनन्त जीवन लाभ कर सकेगा।

वत्स, यदि तू इस जीवन को पाना चाहता है तो मेरी आज्ञाओं का पालन कर।

यदि सत्य को जानना चाहता है तो मुझमें विश्वास कर।

यदि सिद्ध (पूर्ण) होना चाहता है तो तेरे पास जो कुछ है उसका त्याग कर।

यदि मेरा भक्त होना चाहता है तो मुझे पूर्णतः आत्मार्पण कर।

यदि जीवन धन्य करना चाहता है तो इस (सांसारिक) जीवन को तुच्छ समझ।

हे प्रभु, तेरा मार्ग कठिन है तो भी मैं उस पर चलूँगा, मुझे शक्ति दे। मैं तो अति क्षुद्र हूँ। स्वामी की अपेक्षा दास और गुरु की अपेक्षा शिष्य तो सदा ही छोटा है।

दयामय, अपने दास का पवित्र जीवन के अनुशीलन और अनुसरण में अभ्यस्त होने दे। इसी में मेरा उद्धार है, क्योंकि इसी से मैं पवित्रता लाभ कर सकूँगा।

वत्स, जितना तूने पढ़ा या जाना है यदि उसी का पालन कर तो तू बहुत सुखी हो सकेगा।

जो कोई मेरी आज्ञा सुनकर उसका पालन करता है वही मुझे प्रेम करता है। उसी को मैं प्रेम करता हूँ और उसी के निकट अपने को प्रकाशित करता हूँ।

[३८]

पतन में निराशा उचित नहीं

वत्स, आनन्द के समय अधिक शान्ति एवं भक्ति प्रकट करने की अपेक्षा, दुःख के समय धैर्य एवं नम्रता मेरे निकट अधिक संतोषजनक है।

अपने विरुद्ध कही गई छोटी-छोटी बातों के लिए तू इतना व्यथित क्यों होता है ? यदि इससे भी कठोर बातें कही जायँ तो भी दुखित और विचलित होना तेरे लिए उचित नहीं।

तू निराश न हो, तेरे जीवन में यह कोई नई घटना नहीं है। अनेक बार तू दुःख उठा चुका है और जबतक जीवित रहेगा तबतक अनेक बार ऐसी घटनायें होती रहेंगी।

जब प्रतिकूल घटनायें नहीं घटतीं, तेरे साहस में कमी नहीं आती। उस समय तो तू सत्परामर्श दे सकता है; अपने शब्द से दूसरों को सबल कर सकता है किन्तु जिस समय कोई दुःख-कष्ट तेरे द्वार पर हठात् उपस्थित होता है, जब तू प्रतिकूल घटनाओं के कारण दुःखी होता है तब तू बिलकुल ही दुर्बल और हतबुद्धि हो जाता है।

वत्स, देख तेरी दुर्बलता कैसी प्रबल है; सामान्य घटनाओं, मामूली परीक्षाओं के आते ही बाहर निकल पड़ती है।

किन्तु याद रख, यह सब परीक्षा तेरे कल्याण के लिए ही होती

है इसलिए जब कोई ऐसी दुःखद या प्रतिकूल घटना घटे तो जहाँतक सम्भव हो दृढ़तापूर्वक उस दुर्बलता को तू हृदय से उखाड़ फेंकने के लिए कमर कस ले और दुःख से यदि तेरा चित्त चंचल हो उठे तो इसके लिए तू निराश न हो, और देरतक अपने को व्याकुल न होने दे। यदि तू आनन्द-पूर्वक ऐसी परीक्षाओं को सहन न कर सके तो शान्ति एवं धीरज के साथ उन्हें सहन कर।

धैर्य के साथ कष्टों को सहन करने की बात सुनने में तुझे कड़वी लगेगी या उसे सुनकर तुझे क्रोध आयेगा, फिर भी आत्म-दमन का अभ्यास कर। कोई अनुचित बात तेरे मुँह से न निकले, इसका सदा ध्यान रख।

जो आँधी इस समय तेरे मन में उठ रही है, वह शीघ्र ही शान्त हो जायगी और भगवान् की कृपा से तेरे हृदय के सब दुःख मधुर हो जायँगे।

मैं सदा तेरे पास वर्तमान और जाग्रत हूँ। पूर्णतः आत्मार्पण करके (भक्तिपूर्वक) पुकारने वालों के लिए मैं सदा सहा-यता करने एवं सान्त्वना देने के लिए प्रस्तुत रहता हूँ।

मन को शान्त रख, धीरज धारण कर और अधिक सहन करने के लिए सदा प्रस्तुत रह।

यदि तेरे मन में यह आता है कि 'मैं सर्वदा ही कष्ट पाता रहता हूँ और बड़े प्रलोभनों एवं परीक्षाओं में पड़ गया हूँ' तो भी इसे भलिभाँति समझ ले कि तू भगवान् की कृपा से सर्वथा वंचित नहीं हो गया है। हाँ, यह अवश्य है कि तू मनुष्य है, मांसमय है, ईश्वर नहीं।

शोकार्त्त लोगों को मैं ही निर्विघ्नता एवं स्वस्थता प्रदान करता हूँ और जो मेरे सामने अपनी दुर्बलता स्वीकार करते हैं उन्हें मैं ही दिव्य जीवन की ओर उठाता हूँ ।

" हे प्रभु, तेरे शब्द मंगलकारी हैं । वे मधु से भी मीठे और सुस्वादु हैं । यदि तू अपने पवित्र वाक्यों से मुझे सान्त्वना न प्रदान करता तो ऐसे कठिन दुःख एवं क्लेश में मैं क्या करता ?

हे प्रभु, मेरी अन्तिम अवस्था जिससे उत्तम हो और इस संसार से प्रस्थान के समय मेरा पथ सुगम हो, ऐसी कृपा कर । हे स्वामी, मेरी ओर ध्यान दे और तेरे पास तक जो मार्ग जाता है उसपर मुझे ले चल ।"

[३९]

यह तो मानवी राग है !

वत्स, मनुष्य-मात्र का स्वभाव है कि किसी न किसी सन्त या महात्मा की ओर वे अधिक आकर्षित हो जाते हैं और उसकी प्रशंसा में ही लग जाते हैं किन्तु इससे भी अनेक बार ईश्वर-प्रेम की अपेक्षा मनुष्य के प्रति आसक्ति ही अधिक व्यक्त होती है ।

मैंने ही सब पवित्र सन्तों का निर्माण किया है; मैंने ही अपनी कृपा से उन्हें धन्य किया है, मैंने ही उन्हें ऊँचा उठाया है।

मुझे प्रत्येक का यथार्थ मूल्य और योग्यता मालूम है; मैं ही अपने मधुर आशीर्वाद से रास्ता दिखाता हूँ । सन्तों ने मुझे मनो-नीत नहीं किया है, मैंने सन्तों को मनोनीत किया है ।

मैं ही अपनी विभूतियों से उनका आवाहन करता हूँ; मैं ही अपनी कृपा से उन्हें आकर्षित करता हूँ और मैं ही अनेक परीक्षाओं एवं प्रलोभनों से उनका उद्धार करता हूँ ।

मैं ही उनके हृदय में गौरवपूर्ण सान्त्वना की वर्षा करता हूँ; मैं ही सदा उन्हें सत्कर्म में लगाता हूँ; मैं ही उन्हें धैर्य का मुकुट पहनाता हूँ ।

मैं उनमें से प्रथम को जानता हूँ और अन्तिम को भी जानता हूँ लेकिन मैं तो उनमें से सभी को असीम प्रेम से आलिंगन करता हूँ । इसलिए जो कोई मेरे किसी क्षुद्रतम भक्त की

अवज्ञा करता है, वह बड़े की भी इज्जत नहीं करता। मैंने किसी तात्पर्य से ही क्षुद्र एवं महान् दोनों को पैदा किया है।

जो कोई सन्तों या महापुरुषों में से एक की भी निन्दा करता है वह मेरी तथा मेरे सब भक्तों की निन्दा करता है। इन सब का एक ही प्रेम-बंधन है; इनकी भावना एक है तथा ये सब एकता एवं प्रेम के सूत्र में बँधे हुए हैं।

सब सन्त अपने सकल गुणों की अपेक्षा मुझे ही अधिक प्रेम करते हैं और स्वार्थ एवं आत्म-प्रेम से दूर रहने के कारण मुझे शीघ्र आत्मार्पण कर पाते हैं। वे मुझे ही सर्व सिद्धियों का मूल मानकर मुझमें ही आश्रय एवं विश्राम ग्रहण करते हैं।

जगत् में कोई चीज भी उनको मुझसे हटाकर दूसरी ओर नहीं ले जा सकती। कोई भी पदार्थ उन्हें पराजित नहीं कर सकता क्योंकि नित्यस्थायी सत्य से पूर्ण होकर उनके हृदय में कभी न बुझनेवाली प्रेम की अग्नि जलती है।

जो लोग स्वार्थ को छोड़ दूसरी वस्तुओं को प्रेम नहीं कर पाते, ऐसे सांसारिक बुद्धि के व्यक्ति भगवद्भक्तों एवं सन्तों के विषय में तर्क-वितर्क करते हैं; यह अनुचित है। ऐसे लोग नित्यस्थायी सत्य का विचार अपनी कल्पना के अनुसार अतिरंजित करके करते हैं। ऐसे व्यक्ति मानवी राग के कारण किसी मनुष्य की ओर अधिक खिंच जाते हैं और जिस प्रकार वह संसार को देखते हैं, उसी प्रकार गूढ़ आध्यात्मिक बातों की भी कल्पना कर लेते हैं।

योगी एवं महापुरुष समाधिस्थ हो अपनी प्रकाशमय चित्शक्ति से जिस सत्य का अनुभव करते हैं उस के पास तक अपूर्ण तार्किक मनुष्यों की कल्पना पहुँच नहीं सकती।

इसलिए हे वत्स, मिथ्या कुतूहल के लिए अपने ज्ञान एवं अधिकार की सीमा से बाहर की किसी वस्तु में हस्तक्षेप न कर। कौन अधिक पवित्र है, कौन दिव्य आनन्द-राज्य के निवासियों में सर्वश्रेष्ठ है, इसके विवाद में न पड़। तू इस तर्क-वितर्क से दूर रहकर यह देख कि तेरे अन्दर आध्यात्मिकता की कैसी कमी है और पापमयी वासनाओं की कैसी अधिकता है। इससे तू मेरे निकट शीघ्र पहुँचने में समर्थ होगा।

जो पवित्र हैं, सन्त हैं वे अपने गुणों पर फूलते नहीं। वे अपनी उत्तमता का स्रोत मुझे ही मानकर मुझको ही आत्मार्पण करते हैं। वे मेरे प्रति सदा ही प्रेम और आनन्द से परिपूर्ण रहते हैं। उन्हें सुख का अभाव नहीं होता; अभाव हो भी नहीं सकता।

[४०]

ईश्वर-निर्भरता

हे प्रभु, इस जीवन में मेरे आश्रय का दूसरा कौन स्थान है? मंगलमय, क्या तू ही मेरे सन्तोष का स्रोत नहीं है? तेरे सिवा और कहाँ मेरा मंगल होगा? जबतक तू उपस्थित है मेरा अकल्याण क्यों होगा?

तुझे छोड़ कर धनवान् होने की अपेक्षा तेरे साथ दरिद्र होना ही मेरे लिए सुखदायक है। तुझे छोड़ स्वर्ग में रहने की अपेक्षा तेरे साथ पृथ्वी का यात्री बना रहना मेरे लिए अधिक सुखद है। जहाँ तू है, वहीं स्वर्ग है; जहाँ तू नहीं है वहाँ मृत्यु और नरक है।

तू ही मेरी आकांक्षा है इसलिए प्राण के समस्त उच्छ्वास और व्याकुलता के साथ तेरे लिए रोना, तड़पना और प्रार्थना करना आवश्यक है।

हे स्वामी, तेरे सिवा और किसी में मेरा पूर्ण विश्वास नहीं है। तू ही मेरी आशा है, तू ही मेरा साहस है, तू ही मेरी सान्त्वना है और हर अवस्था में तू ही मेरा परम बंधु है।

संसार में और सब तो अपने स्वार्थों में लगे हुए हैं, केवल तू ही मेरा त्राता है; केवल तू ही मेरी उन्नति की कामना करता और विभिन्न अनुकूल-प्रतिकूल घटनाओं द्वारा मेरा मंगल साधन करता है। मेरे जीवन में नाना प्रकार के दुःख एवं प्रलोभन आते हैं पर वे सब मेरे ही कल्याण के लिए।

हे प्रभु, तुझ में ही मैंने अपनी सारी आशा स्थापित की है, जो कुछ मेरा कहा जा सकता है वह सब मैं तुझे अर्पण करता हूँ; तेरे सिवा जो कुछ है वह सब चंचल और शक्तिहीन है।

हे नाथ, तेरी कृपा, अनुकूलता, सहायता, शक्ति और सान्त्वना बिना संसार में सबकुछ दुर्लभ है। तू समस्त उत्तमता का आकर है, तू ही जीवन की उच्चता है, तू ही प्रज्ञा की गम्भीरता है इसलिए तुझमें ही अपनी आशा स्थापित करता हूँ। हे पिता, मेरे अन्तश्चक्षुओं को खोलदे, अपने आशीर्वाद के अमृत से मेरे अन्तःकरण को तृप्त एवं पवित्र कर जिससे वह तेरी स्थायी महिमा का मन्दिर बन जाय।

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर के

प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन	।=)
२—जीवन-साहित्य (दोनों भाग)	११)
३—तामिलवेद	॥।)
४—शैतान की लकड़ी अर्थात् व्यसन और व्यभिचार	॥।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ	॥।)
६—भारत के स्त्री-रत्न (दोनों भाग)	१॥।-)
७—अनोखा !	१।=,
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान	॥।-)
९—यूरोप का इतिहास (तीनों भाग)	२)
१०—समाज-विज्ञान	१॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र	॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व	।॥=)
१३—चीन की आवाज़ (अप्राप्य)	।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह (दो भाग)	१।)
१५—विजयी बारडोली	२)
१६—अनीति की राह पर (गांधीजी)	।≡)
१७—सीताजी की अग्नि-परीक्षा	।-)
१८—कन्या-शिक्षा	।)
१९—कर्मयोग	।=)
२०—कलवार की करतूत	=)
२१—व्यावहारिक सभ्यता	।)॥
२२—अँधेरे में उजाला	।≡)
२३—स्वामीजी का बलिदान	।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी	।)
२५—स्त्री और पुरुष	॥)
२६—घरों की सफाई (अप्राप्य)	।)
२७—क्या करें ? (दो भाग)	१॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य)	॥=)
२९—आत्मोपदेश	।)

३०—यथार्थ आदर्श जीवन
(अप्राप्य) ॥-)
३१ जब अंग्रेज नहीं
आये थे— ।)
३२—गंगा गोविन्दसिंह ॥=)
(अप्राप्य)
३३—श्रीरामचरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की
ओर— ॥=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
(अप्राप्य)
३९—तरंगित हृदय „ ॥)
४०—नरमेध १॥)
४१—दुखी दुनिया ॥)
४२—ज़िन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी)
दो खण्ड सजिल्द १॥)
४४—जब अंग्रेज़ आये
(ज़ब्त) १।=)
४५—जीवन-विकास
अजिल्द १।) सजिल्द १॥)

४६—किसानों का बिगुल =)
(ज़ब्त)
४७—फाँसी ! ॥)
४८—अनासक्तियोग तथा
गीताबोध ।=)
अनासक्तियोग श्लोकसहित =)॥
४९—स्वर्ण-विहान (नाटिका)
(ज़ब्त) ।=)
५०—मराठों का उत्थान
और पतन २॥) स० जि० ३)
५१—भाई के पत्र—
अजिल्द १॥) सजिल्द २)
५२—स्व-गत— ।=)
५३—युग-धर्म (ज़ब्त) =)
५४—स्त्री-समस्या
अजिल्द १॥।) सजिल्द २)
५५—विदेशी कपड़े का
मुक़ाबला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी ॥=)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥।)